माया सीरीज़ नं० १२

त्रिकोण

लेखक

अनन्त प्रसाद विद्यार्थी, बी० ए०

अभाव

बाहर मेह पड़ रहा है। वर्षा की धीमी-धीमी फुहारें, मोती के से चंद कण, पृथ्वी के वक्षःथल पर क्रीड़ा-सी कर रही हैं। सावन का महीना, वर्षा का महीना है। रात के बारह बज रहे हैं, पर असीम की आँखों में नींद नहीं है। कमरे के खुले हुये वातायन के निकट ही वह कुरसी पर बैठा हुआ है। एक के बाद दूसरा सिगरेट जल रहा है और उसकी भावना-तरगें उसे किसी दूसरी ही दुनिया की यात्रा करा रही हैं।

बाहर दूर तक फैला हुआ अन्धकार। असीम देख रहा है, मकान के दरवाजे पर से आती हुई यह सीधी सड़क। बिजली के खम्भे, जिनमें प्रकाश की जगमगाहट, सभी को असीम देख रहा है, पर उसका ध्यान इस ओर नहीं है। शहर के बाहरी भाग में वह रहता है। एकान्त-सा स्थान है। रात के अँधेरे में जब वह अपने जीवन के कुछ क्षण काटने के लिये इस घर में आता है, तो केवल यह बिजली का खम्भा ही उसके एकान्त को दूर करता है। कितने ही बार उसके मित्रों ने उससे यह मकान छोड़ देने को कहा, परन्तु कभी उसने इसे छोड़ देने की बात नहीं सोची। उसे तकलीफ है, इस मकान में। एक तो शहर से दूर, दूसरे एकान्त! अभी पिछले ही वर्ष तो सुना था, उसके घर के निकट ही, उस पीपल के पेड़ के नीचे, उस बेचारे नवयुवक की हत्या हो गई थी। किसी से प्रेम किया था, सो उस लड़की के घर वालों ने उसे उसके प्रेम का यह पुरस्कार दिया था।

हाँ, तो असीम इस एकान्त स्थान में रहता है, परन्तु इससे उसे क्षोभ या असतोप नहीं। वह जानता है कि यह स्थान निरापद नहीं

है। पर न जाने क्यों एकाकीपन से उसे मोह-सा हो गया है और इसे वह छोड़ना नहीं चाहता।

सिगरेट केस से उसने दूसरी सिगरेट निकाली, सुलगायी और उठ कर खड़ा हो गया। गर्दन खिड़की से झुका कर बाहर की ओर देखने लगा और छितरी-छितरी वे चन्द बूँदें आकर उसके मस्तक पर बैठ गईं। वह एक बार मुड़ा; रूमाल निकाल कर उन्हे पोंछा और फिर आकर कुरसी पर बैठ गया।

आज पहले से ही असीम कुछ अनमना-सा है। न जाने कितनी पुरानी बातें उभर कर ऊपर आ गई हैं। वर्षों से इन्हें भूला-सा रहा है। इन्हें कभी उसने याद नहीं किया। कभी-कभी यह कह कर वह अपने को भ्रम में डालने का प्रयत्न करता रहा है कि वह जीवन के उन क्षणों को, उन धुँधली तस्वीरों को अब भूल चुका है। पर यह उसकी निरी कल्पना है। वह उन्हे आज भी नहीं भूला है और शायद कभी भूलेगा भी नहीं। और भूले भी कैसे? विमला जो एक बार उसके जीवन में आई, तो इस प्रकार चिपक कर रह गई कि आज तक उसकी याद से छुटकारा पाना उसके लिये असम्भव ही हो गया है। जाने किस बुरे क्षण में उसने विमला को देखा था!

याद उभर आई। उन दिनों वह बी० ए० के प्रथम वर्ष में पढ़ रहा था; पर उसके सामने थी एक समस्या—किस प्रकार वह अपना खर्च चलाये? एक मित्र ने उसे विमला के यहाँ पढ़ाने के लिये रखा दिया था। दस रुपये माहवार मिलते थे। पर यही क्या कम था उस व्यक्ति के लिये, जो पैसे-पैसे के लिये परमुखापेक्षी था? विमला के पिता की उसने यह असीम कृपा ही समझी, नहीं तो दस रुपये में तो उन्हें स्कूल का कोई अध्यापक ही मिल सकता था।

कभी-कभी जीवन में कुछ बातें अज्ञात बन कर आती हैं और फिर अपना ऐसा स्थान बना लेती हैं कि उनसे मनुष्य की सम्पूर्ण आत्मा

परिचालित होने लगती है। विमला उस वर्ष नवीं कक्षा में पढ़ती थी। धनी पिता की सुन्दर सन्तान; पन्द्रह-सोलह वर्ष की उम्र; अल्हड़, हँस-मुख। मास्टरों को उसने सदैव अपने मनोरंजन की सामग्री समझा था। उसके पिता ने असीम से पहले ही कह दिया था—"देखिये मास्टर साहब, यह लड़की बडी चचल है; डरती तो है नहीं और जरा भावुक भी है। इसलिये इससे कभी कोई कड़ी बात न कहियेगा।"

कड़ी बात कहना तो असीम ने जीवन में सीखा ही नहीं, फिर वह विमला से ही कड़ी बात क्यों कहेगा; बोला—"आप इससे निश्चिंत रहे। मैं अपने विद्यार्थियों को बडे ही प्रेम से पढ़ाता हूँ।"

जैसे ट्यूशन करना ही आज सदियों से उसका पेशा हो!

और पहले दिन ही उसे जान पड़ा कि विमला के पिता ने ठीक ही कहा था। घण्टे भर वह विमला के पास बैठा रहा, पर पढ़ाया एक अक्षर भी नहीं। वह लड़की अपने नये मास्टर की जानकारी कर रही थी। क्या नाम है? घर में कौन-कौन हैं? अमुक फिल्म देखी कि नहीं? ऐसे ही न जाने कितने प्रश्न वह पूछ गई और बेचारा असीम न जाने क्यों सब सच-सच बताने को बाध्य होता गया।

पर उसने अमुक फिल्म देखी कि नहीं, इसका उत्तर वह क्या दे? फिल्म तो आज तक उसने एक भी देखी नहीं। इसलिये नहीं कि उसे फिल्म देखना पसन्द नहीं, बल्कि फिल्म देखने के लिये उसके पास पैसे ही नहीं थे। बोला—"मैंने तो आज तक कभी सिनेमा देखा ही नहीं।"

आश्चर्य से उस लड़की की आँखें फैल-फैल-सी गईं। क्षण भर तक वह इस विचित्र-जीव की ओर देख कर बोली—"आपने कोई फिल्म ही नहीं देखी! इसका क्या अर्थ?"

"हाँ, मैंने नहीं देखी।"

"लेकिन क्यों?"

असीम क्षण भर रुका, फिर बोला—"एक तो मैं फिल्म देखना

पसन्द ही नहीं करता, दूसरे मेरे पास फिल्म देखने के लिये इतने पैसे भी कभी नहीं रहे।"

कोई इतना गरीब हो सकता है कि रुपये-आठ आने फिल्म देखने मे भी न खर्च कर सके, यह बात उसकी समझ में न आई। जब कभी वह फिल्म देखने जाती है, तो वह देखती है कि कितने ही गरीब आदमी नीचे वाले दर्जे में बैठ रहते हैं। फिर मास्टर साहब क्यों नहीं देख सकते ? पर पसन्द जो नहीं करते—विमला ने सोचा। क्षण भर वह असीम की ओर देखती रही; फिर बोली—"जब आपने कभी फिल्म देखी ही नहीं तो कैसे नापसन्द करने लगे ?"

असीम मुस्करा कर रह गया। बात टालने की गरज़ से बोला—"अच्छा, चलो, कुछ पढ़ो-लिखोगी या आज सारा समय बात करने मे ही बिता दोगी ?"

विमला ने पुस्तक सामने रख ली, खोली, क्षण भर देखती रही, फिर बोली—"अच्छा मास्टर साहब, आपको एक दिन मैं अपने साथ सिनेमा ले चलूँगी।"

"पढ़ो", असीम ने कहा और विमला ने किताब पढ़ना शुरू कर दिया।

विमला के लिये कई मास्टर रखे गये थे, पर सबसे वह असंतुष्ट रही और अन्त में दस-पाँच दिन बाद सभी को जबाब दे दिया जाता। पर असीम विमला को कुछ ऐसा पसन्द पड़ा कि उसे बदलने की जरूरत उसने महसूस न की।

शनिवार के दिन शाम को जब वह विमला के बँगले पर पहुँचा तो देखा—ताँगा 'पोर्टिको' में खड़ा है। वह क्षण भर के लिये द्वार पर ही रुक गया। फिर सोचा, कोई आया होगा और चुपचाप हाल मे पहुँच गया। विमला हाल के बग़ल वाले कमरे मे पढ़ती थी, परन्तु उस दिन वह कमरा बन्द था। नौकर की प्रतीक्षा करता हुआ असीम हाल मे ही एक

कुरसी पर बैठ गया। इसी समय आ गई विमला। आते ही बोली—
"बस,-बस, हम लोग आपकी ही राह देख रहे थे। बड़ी देर की।"

"मेरे पास कोई घड़ी तो है नहीं, फिर भी शायद ज्यादा देर न हुई होगी।"

"हुई क्यों नहीं ? हम लोग सिनेमा के लिये तैयार हैं।"

"अच्छा, तो फिर मैं बेकार ही आया।"

"बेकार क्यों ? आपको भी तो ले चलूँगी।"

इसके पूर्व कि असीम कुछ उत्तर देता, वह अन्दर चली गई और क्षण भर बाद ही अपने सम्पूर्ण कुटुम्ब के साथ बाहर आ गई। हाल से बाहर जाते हुये उसने शासन के स्वर में कहा—"आइये मास्टर साहब !"

असीम मन्त्रमुग्ध-सा उसके पीछे-पीछे चला गया। जब सब लोग ताँगे पर बैठ गये तब विमला ने कहा—"आप भी बैठिये, मास्टर साहब !"

"मैं क्या करूँगा जाकर ?"

"बैठिये।" उसने फिर कहा।

असीम चुप था, पर ताँगे पर बैठ न सका।

"आप यदि नहीं चलेंगे तो मैं आप से अब न पढ़ूँगी।" कह कर वह रूठ कर बैठ गई। धनी की लड़की अपनी जिद की पक्की होती है।

विमला के पिता ने असीम को असमंजस में पडे हुये देख कर कहा—"चलिये न, मास्टर साहब, हर्ज ही क्या है ? और फिर इसका भी तो हठ आपको रखना है।"

कोई उपाय नहीं था; चुपचाप असीम बैठ गया—ताँगे पर।

सिनेमा हाल मे विमला असीम के पास ही बैठी। खेल शुरू हुआ और उसके साथ ही शुरू हुआ विमला का असीम को समझाना,

उसने विमला का सिर हाथों में पकड़ लिया। उसकी आँखों मे आँसू छलछला आये।

विमला भी बैठ गई। पर्चों के सम्बन्ध में अनेक तरह की बाते होती रहीं। अगले वर्ष क्या करना चाहिये, इस पर बातचीत होती रही। विमला के पिता ने इन बातों मे भाग नहीं लिया। कुछ देर बाद वह बोले—"अरे बेटी विमला, तुम पास हुईं तो अपने मास्टर साहब को मिठाई न खिलाओगी क्या?"

"खिलाऊँगी क्यों नहीं?" विमला बोली।

"तो जाओ, ले आओ कुछ, जलपान के लिये।"

"जलपान तो ला देती हूँ, पर मास्टर साहब को मिठाई खिलाऊँगी कल।" कहती हुई वह उठी।

असीम कहता ही रहा —"मैं घर से खा-पीकर चला हूँ, पानी नहीं पियूँगा।" पर सुनता कौन है?

थोड़ी देर में वह नौकर के हाथ चाय की 'ट्रे' लिवाये हुये आई। असीम के सामने चाय के साथ मिठाइयाँ, नमकीन और फलों की तश्तरियाँ रख दी गईं। क्षण भर तक वह अपने सामने रखे गये इस जलपान को, जिसको खा लेने के बाद शायद उसे फिर उस समय भोजन की आवश्यकता न पड़ती, देखता रहा। फिर बोला—"इतना तो मुझसे न खाया जायगा।"

"खाइये भी मास्टर साहब, यह भी क्या बहुत है?" विमला के पिता ने कहा।

असीम बाध्य होकर खाने लगा।

चाय का एक घूँट गले से उतारते हुये विमला के पिता ने नौकर से कहा—"रामचरन, साईकिल लेकर अभी दरजी के यहाँ जाकर उसे बुला लाओ। कह दो, कपड़े नापने हैं।"

नौकर चला गया।

"क्यों माँ, कुछ काम है क्या ?"

"हाँ, तेरी शादी के लिये कोई आने वाले हैं।"

असीम हँस पड़ा, बोला—"अरे धत्त, विवाह तो मुझे अभी करना है नहीं। अभी तीन वर्ष बाकी हैं, मुझे एम० ए० पास करने मे। और बिना एम० ए० पास हुये मैं कुछ कर नहीं सकता।"

"अच्छा, अच्छा, पहले जो मैं कहती हूँ वह तो कर। तेरे पिता जी कहते थे, बड़ा धनी कुटुम्ब है।"

"होगा भी।"

"अरे हाँ रे, तुझे क्या ? समझता है सारी जिन्दगी खाना बनाने के लिये तो मैं हूँ ही।"

"और जो आये वह खाना न बना कर तुझ पर ही हुकूमत करे तो!" असीम ने हँसते हुये कहा।

"मैं तुझ से शिकायत न करूँगी।" कह कर माँ चलने लगीं।

दरवाजे पर क्षण भर रुक कर वे फिर बोलीं—"देख असीम, जाना नहीं, आते ही होंगे।"

असीम ने कुछ उत्तर न दिया। माँ के स्नेह-पूर्ण भोलेपन पर उसे हँसी आ रही थी। पर इससे क्या, उसे अभी विवाह करना ही नहीं है। अपनी सारी महत्वाकाक्षायें वह धूल में नहीं मिला सकता। और फिर पिता की आमदनी ही क्या है ? इतना बडा परिवार ! बीस-पच्चीस रुपये होते ही क्या हैं ? कपडे पहिने ही पहिने वह चारपाई पर लेट गया।

रात भर असीम को नींद न आई। सोचता रहा, जीवन मे विवाह का उसके लिये बहुत महत्त्व था। युवक हृदय की महत्वाकाक्षायें थीं; पर न जाने क्यों बार-बार उसे विमला का ध्यान आ जाता। कितनी सुन्दर और स्वतंत्र पक्षी-सी वह लडकी है। काश ! उसकी पत्नी भी वैसी होती ! जो सज्जन आये थे, कहते थे लड़की पढ़ती है। माँ देखने

कर आँखों में छलछला आई। बोली—"जीती रहो बेटी! तुम्हें सदैव सफलता मिले।"

वृद्धा की आँखों मे आशा के न जाने कौन-कौन-से क्षण याद आने लगे। क्षण भर खड़ी रह कर वह नीचे चली गई।

विमला कुरसी पर बैठी हुई थी। असीम को खडा हुआ देख कर बोली—"बैठिये न, आप खडे क्यों हैं?"

असीम चुपचाप बैठ गया, जैसे उसके पास कुछ कहने को न हो।

विमला फिर बोली—"कल आप आये नहीं तो मुझे बड़ी चिन्ता हुई। सोचा, जाने क्यों नहीं आये। पिता जी भी आपकी बड़ी प्रतीक्षा करते थे। नौकर को आपका घर मालूम था, इसीलिये मैं आ गई।"

"बडा अच्छा किया, मेरी इस कुटिया की शोभा तुम्हारे आने से बढ गई।" असीम ने कुछ रुकते-रुकते कहा।

विमला के कपोलों पर लज्जा की लाली पिघल कर बहने लगी। क्षण भर तक वह असीम को देखती रही फिर आँखें नीची करके बोली—"आपकी तबियत ठीक नहीं है क्या?"

"है तो ठीक।"

"नहीं, ठीक तो नहीं मालूम देती।"

"सम्भव है रात में नींद न आने से ऐसा मालूम हो रहा हो।"

विमला ने कुछ उत्तर न दिया। उठी, खिड़की से झाँक कर सड़क पर देखा; फिर नौकर को बुलाते हुये कहा—"ऊपर आओ।"

नौकर ऊपर आया; हाथों मे एक बडा थाल, एक सफेद तौलिये से ढँका हुआ लिये था।

विमला उसे मेज पर रखने का इशारा करते हुये असीम से बोली —"मास्टर साहब, पिता जी ने आपके लिये यह भेजा है।"

"ऐं!"—असीम जैसे सोते से जगा।

इसी समय माँ ने कमरे मे फिर प्रवेश किया। हाथों में कुछ जल-

वह उसे कुछ देर तक बैठने के लिये भी न कह सका। चलते-चलते विमला ने उससे कहा—"मास्टर साहब, शाम को इन्हीं कपडों को पहिन कर आइयेगा। देखूँगी ठीक सिले हैं या नहीं। हाँ, याद रखिये, सात बजे।"

असीम फिर भी कुछ न बोला।

विमला चली गई तो माँ को सब सामान रखने के लिये कह कर असीम पलग पर लेट गया। सोचने लगा—विमला ने अपने मन में क्या सोचा होगा। मैंने उससे ठीक से बातें भी नहीं कीं। जाने कैसा आदमी हूँ। मेरे विवाह की बात सुन कर उसका चेहरा कैसा हो गया था। पर इससे क्या? वह मुझे कुछ प्रेम थोड़े ही करती है और फिर करती भी हो तो क्या? वह एक धनी पिता की पुत्री है। उसका पति किसी उच्च पद पर नौकर होगा, धन का जिसे अभाव न होगा। और कहाँ वह! नितान्त निर्धन! उसे वह प्रेम कर ही कैसे सकती है?

संसार में सभी वस्तुयें सभी को प्राप्त नहीं। अतएव जो कुछ जिसे प्राप्त होता है, उसी से सतोष करना बुद्धि-सगत है। पर असीम के मस्तिष्क से इस समय प्राप्य और अप्राप्य का भेद जाता रहा।

उसने सोचा—वह विमला के प्रेम के योग्य क्यों नहीं हो सकता? धनी और निर्धन के बीच का यह भेद है क्या? कौन जाने उसका भविष्य कैसा है? सम्भव है कल वह धनी हो जाय और तब क्या वह विमला के योग्य नहीं हो सकता! इस वर्ष बी० ए० पास करने के बाद वह आई० सी० एस० की परीक्षा में अवश्य बैठेगा। यूनिवर्सिटी में उसकी जैसी योग्यता का एक भी विद्यार्थी नहीं है। अपनी कक्षा के विद्यार्थियों को तो वह पढ़ा सकता है।

असीम का हृदय उद्विग्न हो उठा, नसों में खून दौड़ने लगा। उठ कर वह खड़ा हो गया, खिड़की से सिर निकाल कर बाहर की

वैसे कुछ होता तो असीम माँ की इस वेदना का अनुभव करता। माँ को पीडा न पहुँचाना ही उसका सदैव उद्देश्य रहा है, पर इस समय महत्वाकाक्षाओ की बाढ में वह सब कुछ बहा देना चाहता था।

असीम लौट कर अपने कमरे मे चला गया। आकाक्षाओं ने उसके मस्तिष्क के क्षेत्र को विकसित कर दिया था। शीशे के सम्मुख खडे होकर उसने अपना चेहरा देखा। अब तक शारीरिक सौदर्य या कपड़ो की ओर उसने कभी ध्यान नहीं दिया था, पर आज उसे जान पड़ा जैसे वह गलती पर था। बाल इतने बढ आये थे, इसका तो उसे पता भी नहीं था। आज वह बाल अवश्य बनवायेगा। उससे निश्चय किया। बक्स से बटुआ निकाल कर जेब मे डाल लिया और बाल कटाने चला गया।

बाल बनवा कर जब वह वापस आया, तब बारह बज गये थे। पिता खा-पीकर अपने दफ्तर चले गये थे और माँ खाना लिये रसोई मे उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं।

नहा-धोकर खाना खाने के बाद वह कमरे मे आया, फिर शीशे में अपना मुँह देखा। अब कितना सुन्दर दिखाई दे रहा था। क्षण भर बाद उसे ध्यान आया, विमला के भेंट किये सूट को पहिन कर वह देखे कैसा मालूम होता है?

तुरन्त ही बक्स से उसने सूट निकाला, पहिना, टाई लगाई, शीशे के सम्मुख खडा हुआ तो उसे जान पडा जैसे वह कोई बडा आदमी हो। तुरन्त ही ख्याल आया शाम को यही सूट पहिन कर वह विमला के यहाँ जायगा। नई रिस्टवाच उठा कर देखा—एक बज कर बीस मिनट! अभी बहुत समय है।

पर—पर! उसे ध्यान आया उसके पास सूट पर पहिन योग्य जूता नहीं है। चप्पल वह पहिन नहीं सकता। तब वह क्या करे? क्यों न, जब सूट दिया था, तो जूता भी खरीद देते।

और वह द्रुत-गति से बढ़ा चला जा रहा था।

बँगले के दरवाजे पर पहुँचते ही उसे विमला मिली। असीम को देखते ही बोली—"आ गये आप, मास्टर साहब! मैं आपकी ही प्रतीक्षा कर रही थी।"

"आया तो मैं ठीक समय से, देर तो हुई नहीं।" असीम ने मुस्कराते हुये उत्तर दिया।

"हाँ, देर तो नहीं हुई पर मैं अकेली हूँ, इसलिये सोच रही थी कि आप जल्दी आ जाते तो अच्छा रहता।"

"अकेली क्यों हो?" असीम रुक गया था।

"सब लोग सिनेमा गये हैं।"

"और तुम?"

"मेरी तबियत ठीक न थी। और आप तो उस समय आये नहीं।"

असीम ने अनुभव किया जैसे विमला आँखो ही आँखों मे कुछ कह रही हो। क्षण भर तक वह उसी की ओर देखता रहा। फिर बोला, "अच्छा तो मैं चल रहा हूँ!"

"क्यों?"

"और क्या करूँ?"

"चलिये, थोड़ी देर बैठिये न!"

विमला की आँखों में आग्रह था। असीम मन्त्र-मुग्ध-सा बँगले के अन्दर चला गया।

विमला सीधे अपने सोने के कमरे मे जाकर बैठ गई। असीम भी उसके पीछे-पीछे चला गया।

दोनो में से किसी ने कुछ नही कहा। विमला पलग पर बैठी थी। एकटक असीम की ओर देखते हुये बोली—"बैठ जाइये।"

असीम कुरसी खींच कर बैठ गया। उसके विचारों मे तूफान आ रहा था।

"नही विमला, तुम मेरी बात सच मानो।"

"देखूँगी।"

विमला चुप हो गई। उसके हृदय की निराशा धीरे-धीरे दूर-सी हो रही थी। वह सोच रही थी, असीम ने विवाह करने से इन्कार कर दिया। क्या मेरे ही कारण उसने विवाह से इन्कार कर दिया है। नहीं, यह सम्भव नहीं है। साल भर से असीम आता है, पर कभी उसने ऐसा तो भाव प्रदर्शित नहीं किया। सोचते-सोचते थक कर वह पलग पर गिर पड़ी।

असीम भी कुछ सोच रहा था। सहसा विमला को लेटते देख कर चौक-सा पड़ा। कुरसी से उठ कर निकट आया और पूछा—"क्यों विमला, कैसी तबियत है?"

विमला चुप थी।

असीम ने झुक कर उसकी अर्धोन्मीलित आँखों को देखा। वेदना से जैसे वे भरी-सी थीं। विमला की गर्म-गर्म साँसे जो उसके गालों तक आ रहीं थीं, उनको अनुभव करके वह क्षण भर के लिये विचलित हो गया। उसने फिर पूछा—"विमला, क्या बात है?"

विमला ने आँखे खोलीं, बोली—"जी घबरा रहा है। दिन भर से सिर मे दर्द था। थोडी देर बैठी रही, इसी से शायद जी घबराने लगा है।"

असीम सीधा खड़ा हो गया। चारपाई के निकट रखी हुई छोटी मेज़ पर 'यूडी कोलोन' की एक शीशी उसे दिखाई पड़ी। बोला—"कोलोन लगाओगी।"

विमला ने विचित्र प्रकार की आँखे बना कर उसकी ओर देखा। असीम ने अनुभव किया जैसे कोई अज्ञात-शक्ति उसे किसी अज्ञात दिशा की ओर खींचे लिये जा रही थी। बिना कुछ उत्तर पाये ही उसने शीशी उठाई और पलग के सिरहाने बैठ कर कोलोन की चन्द

विमला ने कुछ उत्तर न दिया। असीम ने फिर पूछा। विमला ने उसके हाथों के बीच अपना मुँह छिपाते हुये उत्तर दिया—"आप जाने क्या पूछते हैं ? मैं कुछ नहीं जानती।"

इसी समय बाहर ताँगे की आवाज सुन पडी। विमला तुरन्त उठी और अपने पढने के कमरे में चली गई। असीम भी उसके पीछे-पीछे चला गया। विमला के पिता आ गये थे। आते ही वे उसके पढने के कमरे मे पहुँचे। विमला को किताब खोले बैठे देख कर तुरन्त ही बोले—"मैं जानता था, मास्टर साहब आये होंगे और तुम जरूर पढने बैठ गई होगी।"

"ऐसे ही थोड़ा-सा पढने लगी थी, पिता जी।"

"थोड़ा ही सही भाई, पर तन्दुरुस्ती पहले और सब बाद को करना चाहिये। कितना मैंने तुझे समझाया, पर तू जब माने तब तो।"

असीम की ओर मुँह करके वे फिर बोले—"मास्टर साहब, सुबह आपके यहाँ से आने के बाद ही इसके सिर में इस जोर की पीडा शुरू हुई कि इसने आज खाना तक नहीं खाया। और इस समय पढने बैठ गई।"

असीम को कुछ उत्तर देना चाहिये था। पर कुछ उत्तर उससे देते न बन पड़ा।

पिता जी फिर बोले—"अच्छा, तो इस समय पढना बन्द करो।"

विमला ने तुरन्त किताब बन्द कर दी। असीम उठ कर अपने घर के लिये चल पड़ा।

मार्ग भर वह सोचता चला जा रहा था—विमला उससे प्रेम करती है। सुबह से ही उसके यहाँ से आते ही, उसके सिर में दर्द होने लगा था। क्यों ? वह इसे ख़ूब जानता है। और इस समय उसे देख कर वह कितनी प्रसन्न हो उठी थी ! जैसे दिन भर ही वह प्रसन्न रही हो। विमला उससे प्रेम करती है, वह उसकी है।

मेरे और तुम्हारे बीच धन की एक बड़ी खाई है। तुम एक धनी की पुत्री हो और मैं एक निर्धन व्यक्ति। मुझे तुमसे प्रेम करने का अधिकार नहीं। जानता हूँ कि मैं तुम्हारे प्रेम का प्रतिदान करने के योग्य नहीं हूँ। यदि हम परस्पर प्रेम भी करें, तो भी कुछ लाभ नहीं। तुम्हारा मुझसे विवाह हो नहीं सकता। फिर क्या वह तुम्हे नष्ट करना न होगा?

तुमको मैंने प्यार किया है और सारे जीवन भर करता रहूँगा। परन्तु मेरा प्रेम तुम पर तभी प्रकट होगा, जब मैं अपने को तुम्हारे योग्य बना लूँगा। यदि उस समय तक तुम अविवाहित रहीं, तो एक बार अपने को तुम्हे सौंपने का प्रयत्न करूँगा। अन्यथा तुम्हारी स्मृति को लेकर ही जीवन-यापन करने का विचार है।

अपने विचार से मैं कहीं फिर स्खलित न हो जाऊँ, इसलिये आज से तुम्हारे यहाँ पढ़ाने आना बन्द कर रहा हूँ। आशा है, तुम मेरे हृदय की बातें समझ जाओगी और बुरा न मानोगी। मेरी याद को लेकर अपने जीवन मे व्यर्थ का दर्द न पैदा करना।

तुम्हारा ही—

असीम।'

लिख कर उसने पत्र रख दिया और पलग पर लेट गया। सोचा, कल पढ़ाने जाऊँगा तो पत्र दे दूँगा। लेटे-लेटे उसे कब नींद आ गई इसका उसे पता न लगा।

दूसरे दिन शाम को वह पत्र जेब मे डाल कर पढ़ाने के लिये गया। विमला उस दिन अन्य दिनो की अपेक्षा अधिक प्रसन्न थी। असीम गम्भीर बना बैठा रहा। उसकी गम्भीरता विमला को खल रही थी। आज उसने जी भर कर असीम से सब कुछ कहने का निश्चय किया था, परन्तु असीम का यह परिवर्त्तन देख कर उसका कुछ भी साहस न हो रहा था। उसने पूछा—"आपकी तबियत कुछ ठीक नहीं है क्या?"

विमला की तस्वीर उसकी मेज पर रखी रहती थी। रात के अनेक घंटे वह उस तस्वीर को देखते हुये काट देता। कभी सोचता उसने ट्यूशन छोड कर भूल की। कम से कम विमला को रोज देख तो सकता था। पर फिर उसे अपने कर्त्तव्य का ध्यान आ जाता।

एक दिन वह कालेज से आ रहा था कि राह में उसे विमला का ताँगा मिल गया। अकेली बैठी हुई वह स्कूल से लौट रही थी। असीम ने उसे देख कर मुँह फेरना चाहा, पर न फेर सका। विमला ने असीम को देखते ही ताँगा रुकवा दिया और असीम को बुलाया। जब असीम ताँगे के पास आ गया, तब उसने पूछा—"आप घर जा रहे हैं?"

"हाँ।"

"तो आइये ताँगे पर बैठ जाइये।"

"नहीं आप जायँ, मैं चला जाऊँगा।"

'आप' शब्द विमला के हृदय मे चोट कर गया। तड़प कर वह बोली—"क्या आपको तनिक भी दया नहीं है?"

असीम ने कुछ उत्तर न दिया। विमला ने फिर आदेश भरे स्वर मे कहा—"आओ!"

असीम से इस बार इन्कार करते न बन पड़ा। चुपचाप ताँगे पर बैठ गया। विमला क्षण भर तक चुप रही, फिर बोली—"आपने पढाना छोड दिया, तो क्या आने से भी कसम खा ली?"

"नहीं, पर कुछ काम न होने पर आना मुझे ठीक नहीं जँचता।"

"तुम्हे इससे क्या कि किसी पर क्या गुजरती है?"

असीम ने विमला की ओर देखा, पर उत्तर न दिया। विमला की आँखों में आँसू छलछला आये। वह बोली—"तुम्हे यह निर्णय करने का आखिर अधिकार क्या था? अपने लिये तो तुमने यह सब सोचा था, पर मेरे लिये भी कुछ सोचा था?"

असीम को जान पडा, जैसे उसने भूल की हो।

पडा। विमला ने फिर कहा—"हम लोग ३१ तारीख की रात वाली गाड़ी से जायँगे। उस दिन एक बार जरूर आना।"

"आऊँगा।" कह कर असीम अपने घर के द्वार की ओर बढ़ा और ताँगा आगे बढा। द्वार पर क्षण भर रुक कर असीम ने ताँगे पर जाती हुई विमला को देखा। धोती के आँचल से वह अपनी गीली आँखे पोंछ रही थी। असीम की आखों मे भी आँसू छल-छला आये। उसने मुँह फेर कर दरवाजे की कुँडी खटखटाई।

कमरे में जाकर उसने किताबे मेज पर रख दीं। विमला का दिया हुआ वह चित्र मेज पर रखा हुआ था। एकटक असीम चित्र को देखता रहा। एकाएक उसे जान पड़ा जैसे उस चित्र को उसने कई दिनों से देखा न हो। उठा कर चित्र को छाती से लगा लिया। फिर रूमाल से, बडे धीरे-धीरे, उस पर पड़ी हुई गर्द को झाड कर मेज पर रख दिया, और धीरे से बोला—"रानी, तुम नहीं जानती कि तुम्हे छोडने के लिये मुझे कितना त्याग करना पडा है! मेरे हृदय पर क्या बीतती है यह तुम नहीं जानतीं।"

कपडे उतार कर उसने खूँटी पर टाँग दिये और चारपाई पर पड़ रहा। सहसा उसका हृदय विचारों की आँधी से भर गया। रह-रह कर विमला की याद सताने लगी। सोचते-सोचते उसे नींद आ गई।

नींद मे उसने एक विचित्र-सा स्वप्न देखा। लगा, मानो बरसात की सध्या है। आकाश मे काले-काले बादल इधर-उधर बिखर रहे हैं। पृथ्वी पर हरी घास का मैदान फैला है, जिसमें जगह-जगह पर अनेक प्रकार के फूल फूले हुये हैं। और वह एक नदी के तट पर बैठा हुआ है। उसके पैरों से नदी की लोल लहरे आ-आकर टकराती हैं और क्षण भर मे ही अपना अस्तित्व नष्ट कर देती हैं।

इसी समय नदी के वक्षःस्थल पर से कोई मूर्त्ति आती दिखाई पड़ती है। जब वह निकल आती है तब वह देखता है कि यह तो विमला

के पिता बाहर ही बैठे हुये थे। सारा सामान बंध चुका था। रात की गाडी से उन्हे जाना जो था। असीम को देखते ही उठ खड़े हुए। अंक में भर कर बोले—"असीम बाबू, हमसे क्या भूल हुई कि आपने हमें इस प्रकार छोड दिया ?"

असीम ने लज्जित होकर कहा—"आप से भूल क्या हो सकती थी ? मेरा दुर्भाग्य था कि मुझे समय ही नहीं मिलता था।"

"आप के चले जाने के बाद से विमला का मन पढाई से छूट गया। उसने दूसरा मास्टर रखने से इन्कार कर दिया। अपने आप पढती है।"

असीम ने कुछ उत्तर न दिया। विमला के पिता ने कहा—"मास्टर साहब, आपने हमारे यहॉ पढाना क्यों छोडा, यह अब तक हम लोग समझ न सके। आप भी कुछ नहीं बताते ?"

असीम क्या उत्तर दे, बोला—"कोई विशेष कारण नहीं था, बाबू जी! मेरी तबियत में आ गई इसलिये छोड दिया। समय की कमी रहती थी।"

"खैर, मुझे सब से बडी चिन्ता इस बात की थी कि आपको विमला ने कुछ कह तो नहीं दिया, जिसके कारण आपने पढ़ाना छोड़ दिया हो।"

"नहीं, नहीं, विमला से मुझे कभी किसी प्रकार की शिकायत नहीं हुई। मुझे उसको पढ़ाने में एक प्रकार का सुख मिलता था। पर बताया न आपसे, मैंने समय के अभाव के कारण ही ऐसा किया है। अन्यथा और कोई कारण नहीं था। इस वर्ष मेरा अन्तिम वर्ष है और मैं बहुत अधिक परिश्रम करना चाहता हूँ।"

"बहुत अच्छा है, मास्टर साहब, ईश्वर आपकी इच्छा पूरी करे। मुझे बडी प्रसन्नता है।"

इसी समय विमला अन्दर से आ गई। असीम को देखते ही

असीम कुछ न बोला।

बुक कराने के लिये सारा सामान लेकर असीम स्टेशन चला गया। सब सामान बुक करा चुकने के बाद जब खाली हुआ तब शाम हो चुकी थी। रात की गाड़ी से सब को जाना था। स्टेशन से लौट कर वह सीधा विमला के घर पहुँचा। चलने की तैयारी हो रही थी। असीम को देख कर विमला के पिता ने पूछा—"सब काम हो गया मास्टर साहब !"

"जी हाँ।"

उसने फिरते रुपये और रसीद दे दी।

सब लोग तैयार हो बाहर निकले। विमला ने कहा—"मास्टर साहब, आप हम लोगों को गाड़ी पर नहीं बैठायेंगे क्या ?"

"किन्तु अभी तो बहुत देर है, ट्रेन को।"

पिता जी ने कहा—"हाँ, पर हम यहाँ से सीधे स्टेशन नहीं जायेंगे। एक और जगह भी जाना है। वहाँ से होते हुये तब स्टेशन जायेंगे।

"तो मैं स्टेशन पर ही मिलूँगा।" असीम ने उत्तर दिया।

"साथ ही चलें, आप भी।" विमला ने कहा।

"नहीं, मैं स्टेशन पर ही मिलूँगा।"

"अच्छा," विमला ने उदास-सी होकर कहा।

चलते-चलते विमला ने फिर धीरे से कहा—"पर आना अवश्य ! नहीं तो—"

"अवश्य !" असीम ने कहा और बँगले से निकल कर सीधा स्टेशन की ओर चल पड़ा।

मार्ग भर सोचता जा रहा था—विमला के चले जाने पर उसका क्या होगा ? यहाँ तो उसे आशा थी कि कभी-कभी भेंट हो ही जायगी, पर अब तो यह भी सम्भव नहीं है। उसे एक असह्य वेदना सी होने लगी। मन को भुलाने के लिये उसने एक सिगरेट खरीदी, जलाई और दूकान से दूर हट कर धीरे-धीरे पीता हुआ स्टेशन की ओर चला।

असीम के आने की ही प्रतीक्षा थी। टिकट लिये गये और सब लोग प्लेटफार्म के लिये चले। विमला पीछे रह गई थी। असीम के साथ-साथ चलते हुये उसने कहा—"अब कब मिलेंगे?"

"जब समय मिलायेगा।"

"कभी लखनऊ न आइयेगा?"

"हो सकेगा तो अवश्य आऊँगा।"

विमला चुप हो गई। क्षण भर चुप रह कर फिर बोली—"प्रियतम, मैंने अपने को तुम्हे सौंप दिया है। माना कि तुमने ठुकरा दिया है पर मैं सदैव ही तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी।"

असीम की आँखों में आँसू आ गये। वह विमला को ठुकरा कैसे सकता है। पर वह जानता है कि अभी वह विमला के योग्य नहीं है। जब हो जायगा तब एक बार विमला को अपनी बनाने का प्रयत्न वह अवश्य करेगा। इस वर्ष बी० ए० पास करने के बाद वह आई० सी० एस० की परीक्षा में बैठेगा। उसे सफलता अवश्य मिलेगी और तब तो वह विमला के योग्य हो सकेगा। क्षण भर मे ही ये सारी की सारी बातें उसके मस्तिष्क में घूम गई और उसने तुरन्त ही उत्तर दिया—"विमला, घबराना नहीं, बहुत शीघ्र ही वह दिन आयगा।"

"प्रतीक्षा करूँगी।"

कुलियों ने डिब्बे में सामान रखना शुरू किया। सब लोग बैठ गये। असीम प्लेटफार्म पर खड़ा था। विमला खिड़की से बाहर सिर किये बैठी थी। असीम की दृष्टि बार-बार विमला की दृष्टि से टकरा जाती थी। दोनों के हृदय की दशा इस समय एक-सी थी। दोनों के हृदय में तूफान उठ रहा था, वह तूफान जिसका अन्त नहीं, जिससे हृदय को शांति नहीं।

ट्रेन छूटने मे थोड़ा समय ही शेष था। गार्ड ने सीटी दी, हरी रोशनी चमक उठी; एजिन ने एक उसाँस भरी और धीरे-धीरे ट्रेन

ही तैयारी प्रारम्भ की। इतने दिनों की लापरवाही का यद्यपि असीम पर बहुत प्रभाव पड़ा था और वह बहुत पीछे भी रह गया था; परन्तु उसके दृढ निश्चय ने उसे शीघ्र ही सब के आगे कर दिया। अध्यापक लोग तो उसकी योग्यता से पहले से ही परिचित थे।

वार्षिक परीक्षा में असीम यूनीवर्सिटी भर में सर्व प्रथम आया। उसे अपने उद्देश्य की पूर्ति निकट दिखाई देने लगी। रमेश ने एम० ए० में प्रवेश किया; परन्तु असीम ने आगे न पढने का निश्चय किया। घर पर ही रह कर वह आई० सी० एस० की तैयारी करने लगा।

असीम ने आई० सी० एस० की परीक्षा दी। भाग्य उसके साथ था और वह चुन भी लिया गया। जिस दिन आई० सी० एस० की परीक्षा का परिणाम निकला, उस दिन असीम की खुशी का ठिकाना न था। उसने उसी दिन शाम को लखनऊ जाने का निश्चय किया।

शाम को रमेश उससे मिलने आया। रमेश पर प्रोफेसर बनने की धुन सवार थी। असीम की इस सफलता से उसे बड़ी प्रसन्नता हुई थी। यद्यपि उसने सदैव कहा है—"असीम, तुम्हारा मस्तिष्क प्रजा पर शासन करने या मुकदमों के फैसला करने के लिये नहीं बना है। तुम तो विद्वान् होने के लिये बने हो; अध्ययन करो और अपने अध्ययन से ससार का हित करो।"

असीम के जीवन का उद्देश्य भी विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर होने का था, परन्तु विमला ने उसके जीवन में प्रवेश करके उसके निश्चय को बिलकुल बदल दिया था। फिर भी उसे सतोष था। उसे इस नये पथ पर भी तो सफलता ही मिली थी।

रात की ट्रेन से वह लखनऊ के लिये तैयार हो गया। इण्टर क्लास के डिब्बे मे बैठा हुआ, वह प्लेटफार्म की ओर देख रहा था।

छूटते ही उन लोगों ने एक-एक बर्थ पर अपना अड्डा जमाना शुरू किया था। लड़की ने असीम के सामने वाली बर्थ पर अपना बिस्तर लगा लिया था और तकिये के सहारे लेटी हुई असीम के इन कामों को देख रही थी। असीम ने ध्यान आते ही जो अपने सामने देखा, तो उस लडकी को अपनी ओर देखते हुये पाया। वह लज्जित हो गया। चुपचाप तस्वीर को तकिये के नीचे रख दिया और मुँह फेर कर लेट गया। बालिका खिलखिला कर हँस पड़ी। हँसने की आवाज़ सुन कर असीम ने फिर मुँह फेर लिया, उसकी आँखों से क्रोध टपक रहा था। लड़की यह समझ सकी या नहीं किन्तु बोली—"आप कहाँ जाइयेगा ?"

असीम प्रश्न सुन कर और भी जल उठा, बोला—"आप को यह जान कर कुछ लाभ नहीं पहुँचेगा।"

"यह आपने कैसे समझ लिया।" लड़की ने पूछा; उसकी आँखों मे मुस्कराहट थी।

असीम को यह लड़की अजीब मालूम पड़ी। बोला—"आप क्यों किसी के बारे मे कुछ जानने की कोशिश करती हैं—जब वह बताना नहीं चाहता ?"

"अच्छी बात है साहब, क्षमा कीजियेगा।" कह कर वह चुप हो गई।

असीम ने फिर मुँह फेर लिया। सोचने लगा—उसने नाहक ही इस लड़की के साथ इतना बुरा व्यवहार किया। यदि वह बता ही देता कि उसे कहाँ जाना है तो क्या हानि थी। आखिर उसे भी तो एकाकी ही यात्रा करनी पडेगी।

किन्तु अब हो ही क्या सकता था। जेब से उसने सिगरेट निकाली और जला कर पड़े-पडे ही पीने लगा। बाहर से आती हुई हवा सिगरेट के धुये को डिब्बे के अन्दर फेकने लगी। लड़की ने तुरन्त ही कहा—"महाशय जी, यदि आप सिगरेट उधर जाकर पिये तो बेहतर हो। सारा धुआँ मेरे मुँह पर आ रहा है।"

लखनऊ स्टेशन आ गया और गाड़ी से उतरते हुये उस लडकी ने अपना पता असीम को देते हुये कहा—"आइयेगा अवश्य, मेरे यहाँ !"

"अच्छा।" असीम ने कहा।

गाड़ी लगभग पाँच बजे सुबह स्टेशन पहुँची थी। इसलिये असीम ने सोचा कि किसी होटल मे चल कर, नहा-धोकर तब जाऊँगा। ऐसे ही जाना उसे अच्छा न लगा। स्टेशन के निकट ही एक होटल मे चलने के लिये उसने कुली से कहा। होटल के एक कमरे मे अपना सामान रख कर, नित्य कर्म से छुट्टी पाने के लिये वह चला गया।

नहा-धोकर जब असीम अपने कमरे मे वापस आया तब छः बज रहे थे। होटल के नौकर ने कमरे के दरवाजे पर आकर पूछा—"हुजूर चाय !"

चाय की असीम को विशेष आदत नहीं, परन्तु अब तो वह आई० सी० एस० हो गया है, फिर कैसे चाय न पिये ? उसने नौकर को हुक्म दिया—"हाँ, टोस्ट और अडे भी।"

थोडी देर मे सब सामान आकर उसके सम्मुख रख दिया गया। वह चाय पीने लगा और नौकर को ताँगा लाने की आज्ञा दी। चाय पी चुकने के बाद वह कपडे पहिन ही रहा था कि नौकर ने आकर कहा—"हुजूर, ताँगा आ गया है।"

"अच्छा", कह कर असीम ने सूट पहिना और कमरा बन्द कर के, बाहर आकर ताँगे पर बैठ गया। ताँगे वाले को विमला के घर का पता बता दिया। ताँगा चल पड़ा।

असीम का मस्तिष्क विचारों का सागर बना हुआ था। ताँगे पर से ही उसने देखा, बाजे-गाजे के साथ एक वर महोदय जनवासे को लौट रहे हैं। शायद रात मे विवाह करने के बाद वे अब वापस आ रहे होंगे। असीम सोचने लगा—एक दिन वह भी इसी प्रकार विमला को ब्याह कर वापस आयगा।

असीम ने सिगरेट गाडी के बाहर फेंक दी। लड़की ने मुस्करा कर कहा—"आप तो बड़े भले आदमी मालूम होते हैं।"

"पर अब तक तो आपने मुझे बहुत ही बुरा आदमी समझ रखा होगा।"

"आपके व्यवहार से और कुछ कोई समझ ही क्या सकता था?"

असीम मुस्करा उठा; बोला—"क्षमा करें।"

लड़की ने कुछ उत्तर न दिया। असीम ने फिर प्रश्न किया—"आप कहाँ जा रही हैं?"

लड़की ने मुस्करा कर उत्तर दिया—"आप ही का उत्तर मैं भी दूँ?"

असीम ने लज्जित होकर कहा—"मैं अपने उस व्यवहार के लिये क्षमा चाहता हूँ। मैं लखनऊ अपने एक परिचित मित्र से मिलने जा रहा हूँ।"

"मैं भी लखनऊ जा रही हूँ। वहाँ मेरा घर है।" लड़की ने उत्तर दिया।

उसके बाद तो असीम और उस लड़की मे इस प्रकार बातें होने लगीं, जैसे वर्षों की जान-पहिचान हो। वह लखनऊ के एक गर्ल्स कालेज मे इटरमीजियेट मे पढ़ती थी और उसका नाम मोहिनी था। असीम ने भी अपना परिचय दिया।

असीम सोच रहा था—कितनी सुन्दर और अच्छी लड़की है। क्या विमला से भी सुन्दर है? मन दोनों की तुलना करने लगा। कभी विमला तो कभी मोहिनी अधिक सुन्दर मालूम पड़ती।

ज्यों-ज्यों लखनऊ निकट आता जाता त्यों-त्यों असीम का ध्यान विमला की ओर ही अधिक होता जाता। परन्तु जाने क्यों जैसे वह मोहिनी के प्रति भी आकर्षित-सा हो रहा था। ससार मे एक से एक सुन्दर वस्तुये हैं। सभी को एक मनुष्य तो प्राप्त नहीं कर सकता। असीम ने सोचा, यह उसके हृदय का क्षणिक आकर्षण है।

लखनऊ स्टेशन आ गया और गाडी से उतरते हुये उस लड़की ने अपना पता असीम को देते हुये कहा—"आइयेगा अवश्य, मेरे यहाँ !"

"अच्छा ।" असीम ने कहा ।

गाड़ी लगभग पाँच बजे सुबह स्टेशन पहुँची थी । इसलिये असीम ने सोचा कि किसी होटल मे चल कर, नहा-धोकर तब जाऊँगा । ऐसे ही जाना उसे अच्छा न लगा । स्टेशन के निकट ही एक होटल मे चलने के लिये उसने कुली से कहा । होटल के एक कमरे में अपना सामान रख कर, नित्य कर्म से छुट्टी पाने के लिये वह चला गया ।

नहा-धोकर जब असीम अपने कमरे मे वापस आया तब छः बज रहे थे । होटल के नौकर ने कमरे के दरवाजे पर आकर पूछा—"हुजूर चाय !"

चाय की असीम को विशेप आदत नही, परन्तु अब तो वह आई० सी० एस० हो गया है, फिर कैसे चाय न पिये ? उसने नौकर को हुक्म दिया—"हाँ, टोस्ट और अडे भी ।"

थोडी देर मे सब सामान आकर उसके सम्मुख रख दिया गया । वह चाय पीने लगा और नौकर को ताँगा लाने की आज्ञा दी । चाय पी चुकने के बाद वह कपडे पहिन ही रहा था कि नौकर ने आकर कहा—"हुजूर, ताँगा आ गया है ।"

"अच्छा", कह कर असीम ने सूट पहिना और कमरा बन्द कर के, बाहर आकर ताँगे पर बैठ गया । ताँगे वाले को विमला के घर का पता बता दिया । ताँगा चल पड़ा ।

असीम का मस्तिष्क विचारों का सागर बना हुआ था । ताँगे पर से ही उसने देखा, बाजे-गाजे के साथ एक वर महोदय जनवासे को लौट रहे हैं । शायद रात मे विवाह करने के बाद वे अब वापस आ रहे होंगे । असीम सोचने लगा—एक दिन वह भी इसी प्रकार विमला को ब्याह कर वापस आयगा ।

सहसा ताँगे के खडे हो जाने से उसकी विचार-शृङ्खला टूट गई। उसने ताँगे वाले को कहते सुना—"हुजूर किसी से पूछे तो पता चले।"

असीम ने एक आदमी को अपनी ओर आते देख कर विमला के पिता का नाम लेकर उनका घर पूछा।

आगन्तुक ठहर गया; असीम की ओर देखा, फिर उत्तर दिया—"सीधे चले जाइये। आगे कुछ मकानों बाद आपको उनका घर मिलेगा। उनकी लड़की का विवाह है, इसलिये आप आसानी से उनके घर को बिना पूछे जान सकेंगे।"

"उनकी लड़की का विवाह!" असीम के मुँह से आश्चर्य के साथ निकल पडा।

"जी हाँ। अभी जो वह पालकी गई है।"

असीम कुछ अधिक न सुन सका। कटे वृक्ष की भाँति ताँगे पर ही गिर पड़ा।

वह आदमी चला गया। ताँगा आगे बढ़ा, परन्तु उसी समय असीम को जैसे होश आ गया हो। उसने तुरन्त ही ताँगे वाले से कहा—"ताँगा होटल ले चलो।"

"वहाँ नही चलेंगे क्या, हुजूर?"

"नही", असीम ने चिल्ला कर कहा।

ताँगा होटल की ओर मुड़ा।

असीम ने आँखे बन्द कर लीं। ताँगे वाले को खूब तेज चलाने को कहा और पहली ही ट्रेन से उसने लखनऊ छोड़ दिया।

त्रिकोण

अँगरेजी के अध्यापक नहीं आये थे, इसलिये घण्टा खाली था। उर्मिला कमरे से बाहर निकली ही थी कि प्रमदा ने आकर उसके कन्धे पर हाथ रख कर कहा—"उर्मिला, चल पार्क मे चलें।"

"नहीं, मुझे जरा नोट पढना है।" उर्मिला ने उत्तर दिया। दो-तीन दिन बाद वह आज कालेज आई थी।

"ओह चल भी, फिर पढ़ लेना।"

"तू जा, मैं तो लाइब्रेरी मे जाऊँगी।"

"चल तो, तुझे एक बडी ही अच्छी बात बताऊँगी।"

"नहीं सुनती, तू जा।"

पर प्रमदा न मानी और उर्मिला को बाध्य होकर जाना ही पड़ा।

पार्क मे अशोक के एक वृक्ष के नीचे वे बैठ गई। घनी छाया थी। उर्मिला ने कहा—"बात क्या बताना चाहती है?"

प्रमदा मुस्कराई। उसकी आँखे चमक उठीं और उसने उत्तर दिया—"किसी से बतायेगी तो नही?"

"नहीं, तू बता।"

उर्मिला ने जिस दिन स्कूल मे प्रवेश किया था, उसी दिन प्रमदा से उसका परिचय हुआ था। और फिर उसके बाद तो दोनों मे इतनी मित्रता हो गई कि वे सदैव ही एक साथ रहतीं। कभी एक दूसरे से अलग न होतीं। प्रमदा एक धनी पिता की पुत्री थी। पिता बैरिस्टरी करते थे—अच्छी चलती थी। उर्मिला के पिता प्रमदा के पिता के समान धनी तो न थे, परन्तु फिर भी गरीब नहीं कहे जा सकते थे। एक सरकारी दफ़्तर मे वे तीन सौ रुपया मासिक वेतन पाते थे। उर्मिला

मोटर पर कालेज आती थी। उसे घर पर भी काफी स्वतंत्रता थी। बैरिस्टर साहब विलायत घूमे हुए थे; काफी स्वतत्र विचारों वाले थे। वे स्त्रियों की स्वतन्त्रता मे पूरा विश्वास रखते थे और प्रमदा को उन्होंने इसी से किसी काम के लिये रोका नहीं था।

"उस दिन तेरे साथ मैं कालेज से जब वापस गई तो हमारे यहाँ पिता जी के एक मित्र आये थे। उनके साथ उनके लड़के भी थे। वे यहाँ यूनीवर्सिटी मे पढ़ने के लिये आये हैं। उनके पिता मेरे पिता से उनका परिचय कराने के लिये लाये थे।"

"अच्छा है, पर इससे क्या?"

"वही तो बताती हूँ। मेरा भी उनके लड़के से परिचय हो गया है।"

उर्मिला जानती है, प्रमदा का जीवन-सिद्धान्त ही बिलकुल भिन्न है। वह चाहती है कि कितने ही युवक उसके प्रेम के भिखारी बने रहे। उसे इस प्रकार के जीवन मे ही सुख मिलता है।

"प्रेम तो नहीं हो गया?" उर्मिला ने मुस्करा कर पूछा।

"तू तो मजाक करती है, पर है वह बड़ा ही अच्छा युवक। बाइस-तेइस वर्ष की आयु होगी। बड़ा सुन्दर युवक है। उसने मुझे बताया कि वह सदैव ही प्रथम आया है।"

"ओह, तब तू उससे विवाह कर ले न।"

"मैं तो चाहती हूँ, वह है ही ऐसा।"

"मैं तेरी इच्छा की पूर्ति के लिये भगवान् से प्रार्थना करूँगी।"

"और वह भी मुझसे प्रेम करने लगा है।"

"तब तो यह प्रथम-दर्शन का प्रेम है, है न प्रमदा!" उर्मिला ने मुस्करा कर कहा।

"सच कहती हूँ, उर्मिला! तुम जानती हो, मैं प्रेम से सदैव दूर भागती हूँ। मैंने युवकों की मित्रता को सदैव मनोरजन की वस्तु समझा

है, पर इस युवक की ओर न जाने क्यों मैं बराबर खिंचती-सी चली जा रही हूँ। पहले दिन जब पिता जी ने उनसे मेरा परिचय कराया तो बहुत ही लजीले मालूम पडे। मुझसे जरा-सी बातें भी उन्होंने न कीं। केवल इतना ही कहा—'मुझे आप से मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई।'

"फिर पिता जी ने कहा—'उर्मिला इन्हे अपने कमरे मे ले जा। ये मेरे बहुत ही घनिष्ठ मित्र के लड़के हैं। इनकी पूरी खातिर करना।'

"मैं उन्हे अपने पढ़ने के कमरे मे ले गई। वहाँ उनका सकोच कुछ दूर हुआ। बड़ी देर तक मेरी उनसे बात-चीत होती रही। बड़े ही हँस-मुख स्वभाव के निकले।

"मैंने उनसे कहा—'आप तो मुझे पिता जी के सामने ऐसे लगे जैसे कोई नई दुल्हिन। पर मेरा ख्याल गलत निकला।'

"मुस्करा कर उन्होंने उत्तर दिया—'वह बडे-बूढ़ों का स्थान था और यह अपना है।'

"मैंने कहा—'हाँ, इसे अपना ही समझियेगा। मुझे फिलासफरों की शक्ल से सख्त नफरत है। मैं तो हँसता ही रहना चाहती हूँ।'

"तुम मुझे सदैव हँसता ही पाओगी।' उन्होंने मुस्करा कर उत्तर दिया।"

प्रमदा क्षण भर चुप रही, फिर बोली—"सच कहती हूँ उर्मिला, उनकी मुस्कराहट मे कुछ ऐसा नशा था कि मैं तो पागल-सी हो उठी। जी होता था उन्हे जाने न दूँ। चाय भी उन्होंने मेरे ही कमरे मे पी और अत मे जब चलने लगे तब बोले—'किसी दिन आप हमारे यहाँ भी आवे।' मैंने उनसे आने की प्रतिज्ञा की।

"ड्राइवर उन्हे कार से पहुँचा आया था। इसलिये उसने उनका घर देख लिया था। यही कालेज से जाते समय रास्ते में ही तो पड़ता है। उसके पिता जी उसी दिन रात को चले गये। दूसरे दिन जब मैं

कालेज से वापस जा रही थी तब ड्राइवर ने कहा—'बीबी जी, उनका घर यही है। एक बँगले का एक छोटा-सा हिस्सा उन्होंने किराये पर ले रखा है। अकेले हैं। दो-तीन नौकर हैं।' जाने मेरे जी में क्या आया कि मैंने ड्राइवर को मोटर रोक कर यह देखने के लिये भेजा कि बाबू हैं कि नहीं।

"कहीं जाने के लिये वे तैयार ही हो रहे थे। कपड़े पहिन रहे थे। ड्राइवर को देखते ही पूछा—'क्या है जी?'

"ड्राइवर ने बताया कि बीबी जी बाहर खड़ी हैं। सुनते ही झट नगे पैरों बाहर दौड़े आये। मेरे आने पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। मैंने कहा भी—'आज नहीं, फिर किसी दिन आऊँगी। आज तो यों ही घर देखने के ख़्याल से रुक गई।' पर वे न माने। मोटर से उतार कर मुझे अपने बँगले मे ले गये। अपना जाना स्थगित कर दिया और मेरे पास बैठ कर बातें करने लगे। उस दिन उनके ही यहाँ मैंने चाय पी। मेरे लिये उन्होंने दुनिया भर का सामान मँगवाया था। बड़ी देर बाद जब मैं चलने लगी, तो उन्होंने बड़े ही विनीत स्वर मे कहा—'देखो प्रमदा, तुमसे मिल कर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे मुझे अब कोई अभाव नहीं रहा। कभी-कभी इधर आ जाया करो।'

"यह परसों की बात है। कल मैं उनके यहाँ न गई, पर मेरा मन न जाने क्यों किसी काम मे नहीं लगता। जी मे आता है कि बस उन्हीं के पास बैठी बाते करूँ।"

उर्मिला की हँसी फूट पड़ी। बोली—"तो तेरी मनुहार तुझे मिल गयी।"

प्रमदा का मुख-मण्डल गम्भीर हो गया। उसने कहा—"हँसो नहीं तुम उर्मिला! सच कहती हूँ, कोई भी स्त्री जो उसे देखेगी तो उसे अवश्य प्रेम करने लगेगी।"

"यही तो हर स्त्री अपने प्रेमी के सम्बन्ध में सोचती है।"

"पर मैं हर स्त्री की भाँति नहीं हूँ, यह तुम जानती हो।"

"हाँ जानती हूँ, पर अब हो गई हो—प्रेम सबको एक-सा बना देता है।"

"उर्मिला बहिन, तुम मेरी बातों पर तब तक विश्वास न करोगी जब तक तुम उन्हे देखोगी नहीं। आज हम लोग उनके यहाँ चलेगे। तब तुम्हे मेरे कथन की सत्यता मालूम हो जायगी।"

"पर मैं आज तुम्हारे साथ नहीं चल सकती।"

"क्यो?" प्रमदा ने पूछा। उसके नेत्रों में आश्चर्य था।

"इसलिये कि मुझे घर पहुँचना चाहिये!"

"तो क्या घर पहुँचोगी ही नही? कोई तुम्हें रोक थोडे ही लेगा!"

"हाँ, पर देर तो होगी और देर होने से मेरी माँ बहुत बिगड़ेगी।"

"मैं उसका प्रबन्ध कर लूँगी।"

"क्या प्रबन्ध कर लोगी?"

"ड्राइवर हम लोगों को उनके यहाँ पहुँचा कर तुम्हारे घर चला जायगा और कह आयगा कि तुम्हे मेरे यहाँ देर हो जायगी।"

"पर मैं नहीं जाऊँगी। तीन दिन बाद आज ही तो मेरी तबियत ठीक हुई है। और आज ही इतने समय तक बाहर रहना ठीक न होगा। फिर मुझे पिछड़े हुये कोर्स को भी तो देखना होगा!"

प्रमदा हताश हो गई। उसने कुछ उत्तर न दिया। उसकी आँखों में आँसू भर आये। उर्मिला सब कुछ सह सकती है लेकिन प्रमदा के लिये उसके हृदय में जो एक स्थान है, उसके कारण वह उसे रोते नही देख सकती। उसने तुरन्त ही प्रमदा का हाथ अपने हाथों में लेते हुये कहा—"अच्छा, रो नहीं, चलूँगी! पर कहीं ऐसा न हो कि वे तुझे छोड मुझसे ही प्रेम करने लगें!"

प्रमदा की आँखो के आँसू विलीन हो गये। उर्मिला के गाल

पर प्यार का एक चपत लगाते हुये उसने कहा—"चल-चल, बड़ी सुन्दर है न।"

कहने को तो प्रमदा ने यह बात कह दी पर वह यह जानती है कि उर्मिला उससे कहीं सुन्दर है। हाँ, बहुत बनाव-शृंगार के साथ न रहने के कारण वह प्रथम बार देखने में उतनी आकर्षक नहीं मालूम होती। परन्तु ज्यों ज्यों उसके साथ किसी का परिचय बढ़ता है त्यों-त्यों वह अधिक सुन्दर मालूम होती है। इसके विपरीत प्रमदा को पहली बार देखने में, उसके साथ बात-चीत करने मे, उसे देखते रहने की इच्छा होती है, परन्तु कोई भी व्यक्ति उससे अधिक समय तक प्रेम नहीं कर सकता। उसका कुछ ऐसा स्वभाव ही है।

प्रमदा का जी उस दिन क्लास में न लगा। बार-बार वह घडी मे कालेज समाप्त होने का समय देखती रही। अन्त में किसी प्रकार साढ़े तीन बजा। छुट्टी की घटी बोली और उर्मिला का हाथ पकडे हुये वह दर्जे से बाहर निकली। उसका हृदय उछल रहा था।

उर्मिला सदा प्रमदा के साथ ही कालेज आती जाती थी। उसका घर प्रमदा की राह मे ही पड़ता था और वह नित्य उसे अपने साथ कालेज लाती और ले जाती थी।

क्लास रूम से बाहर निकलते ही उर्मिला ने प्रमदा से पूछा—"और यह तो बता—शायद वे इस समय घर पर न हों।"

"नहीं, वे अवश्य होंगे।"

"क्यों, तू ने पहले से कहला रखा है क्या?"

"नहीं—पर वे इस समय मेरी प्रतीक्षा अवश्य करते होगे।"

"आखिर बिना जाने तेरी प्रतीक्षा क्यों करते होंगे!"

"मैंने उनसे कह रखा है कि किसी भी दिन इस समय आ सकती हूँ।"

"तो बस, इसीलिये वे मेरी प्रतीक्षा करते होंगे?"

"हाँ, इसीलिये !" प्रमदा ने उत्तर दिया। उसकी आँखों में विश्वास चमक उठा।

"चल हट, आये बडे प्रतीक्षा करने वाले ! पुरुष अपनी बातों के इस तरह पक्के होने लगे तो हो चुके ! दूसरे, अभी परसो तो तुम गई ही थीं, इसलिये वे क्या सोचते होंगे कि तुम इतनी जल्दी आ सकती हो—कम से कम आज तो वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर नहीं सकते।"

प्रमदा ने जोश के साथ उत्तर दिया—"तो चल, आज सब पता लग जायगा। मैं कहती हूँ, वे मेरी प्रतीक्षा करते होंगे। वे कहीं जा नहीं सकते।"

ड्राइवर ने मोटर का दरवाजा खोल दिया और दोनों के बैठ जाने पर प्रमदा ने ड्राइवर से कहा—"देखो शिवदास, तुम हम लोगों को किशोर बाबू के यहाँ पहुँचा कर इन बीबी जी के घर चले जाना और यह कह देना कि आज कुछ काम से ये मेरे यहाँ रुक गई हैं; थोड़ी देर मे आयँगी। समझे !"

"जी हाँ, समझ गया।"

"यह न कहना कि कहीं और गई हैं। कहना,घर पर ही हैं।"

"अच्छा", ड्राइवर ने उत्तर दिया और मोटर पों-पो करती हुई सड़क पर चलने लगी।

जिस समय प्रमदा और उर्मिला किशोर के बॅगले पर पहुँची, किशोर अपने कमरे में बैठा हुआ चाय पी रहा था। मोटर की आवाज़ सुनते ही वह बाहर दौड़ा आया। उर्मिला को प्रमदा के साथ देख कर वह थोड़ा सकुचाया फिर हाथ उठा कर दोनों को नमस्ते किया।

उर्मिला प्रमदा के पीछे-पीछे कमरे मे घुसी। किशोर भी जाकर टी-टेबिल के निकट बैठ गया, नौकर को बुला कर चाय और केक लाने को कहा और फिर प्रमदा से बोला—"आप कल नही आयीं ?

इतना आकर्षक था कि कोई भी उसकी ओर आकर्षित हुये बिना नहीं रह सकता था। वह प्रमदा से बातें कर रहा था, पर बीच-बीच में वह उर्मिला की ओर भी कनखियों से देख लेता था। एक बार उसकी आँखे उर्मिला से मिल गईं।

टेबिल पर हाथ से प्याला रखते हुये उसने प्रमदा से कहा—"आपकी सखी तो वास्तव में ही लजीली मालूम होती हैं; बात भी नहीं करती; क्यों ?"

प्रमदा ने उर्मिला को अँगुलियों से गुदगुदाते हुये कहा—"बोल रे बोल!"

पर उर्मिला न बोली। जब वे घर लौटीं तो उन्हे काफी विलम्ब हो चुका था। परन्तु घर में पहले ही खबर मिल चुकी थी कि उर्मिला प्रमदा के यहाँ रुक गई है, इसलिये किसी ने कुछ न पूछा।

परन्तु उस दिन उर्मिला को रात भर नींद नहीं आई। वह सोच रही थी, किशोर कितना अच्छा युवक है! कितनी सभ्यता के साथ वह बातें करता था! कितनी बार उसने उर्मिला से बातचीत करने का प्रयत्न किया, परन्तु हर बार वह चुप ही रही; यदि कोई प्रश्न भी उसने किया तो उर्मिला ने उसका उत्तर केवल सिर हिला कर दिया।

उर्मिला सोच रही थी किशोर से उसने क्यों बातचीत नहीं की। वह तो अत्यन्त भले आदमी मालूम होते थे। बार-बार किशोर की वे आँखे उसके सामने नाच जातीं। अब तक उसका किसी अन्य युवक से परिचय नहीं हुआ था। प्रमदा के यहाँ वह बहुधा जाती थी, परन्तु प्रमदा के मित्रों के बीच वह न बैठती थी। कभी प्रमदा ने इसके लिये अनुरोध भी न किया था। इसका कारण केवल यही था कि वह स्वयं उन युवकों के साथ खेल किया करती थी। मनोरंजन ही उसका उद्देश्य था।

उर्मिला अपने माता-पिता की एकमात्र संतान थी, इसलिये माता-पिता का सम्पूर्ण स्नेह उसे प्राप्त था। पिता ने उसी की इच्छा के कारण उसे कालेज में भर्ती कराया था, यद्यपि माँ उर्मिला को और अधिक नहीं पढ़ाना चाहती थीं। उनका कहना था कि अब उर्मिला अपने भर के लिये बहुत पढ़ चुकी है, परन्तु उर्मिला की सबसे बड़ी इच्छा थी अध्यापिका होने की। इसलिये उसने बी० ए० करने के लिये कालेज में नाम लिखाया था। पढ़ने में भी वह बहुत तेज थी।

दूसरे दिन जब वह कालेज गई तो प्रमदा ने पूछा—"कहो किशोर, तुम्हें कैसा लगा?"

"अच्छे हैं; बातचीत से तो बड़े सभ्य मालूम होते हैं।" उसने उत्तर दिया।

"सभ्य! अरे अभी क्या, तुम्हारे कारण तो उसने कल कुछ अधिक बातचीत ही नहीं की, अन्यथा बड़ा अच्छा आदमी है।"

"हाँ, हैं तो।"

"तो देखो, कहीं तुम न उसे प्यार करने लगना!"

उर्मिला मुस्कराई, बोली—"तुम घबराओ नहीं, मैं उन्हे प्यार न करूँगी। तुम्हीं उन्हे प्यार करती हो, यही क्या कम है!"

प्रमदा किशोर की प्रशसा के पुल बाँधती रही और उर्मिला सब कुछ सुनती रही। यदि प्रमदा किसी और की इतनी प्रशंसा करती, तो उर्मिला न सुनती, ऊब जाती, पर किशोर की प्रशंसा सुनने में उसे कुछ आनन्द-सा आ रहा था। वह चाहती थी—प्रमदा और भी कुछ बातें बताये।

दिन बीतते गये। और प्रमदा के साथ ही साथ उर्मिला का भी किशोर से परिचय बढ़ता गया। अक्टूबर का महीना था। विश्वविद्यालय में भाषण-प्रतियोगिता थी। अनेक यूनीवर्सिटियों के विद्यार्थी प्रतियोगिता में भाग लेने के लिये आने वाले थे। विश्वविद्यालय के महिला

विद्यालय से उर्मिला को चुना गया। उसने अपना भाषण तैयार किया। विषय था—'विश्वविद्यालय की शिक्षा-प्रणाली उपयोगी है या नहीं।' किशोर भी प्रतियोगिता मे भाग लेने वाला था। उसे यूनीवर्सिटी में आये हुए अभी थोडे ही दिन हुए थे; परन्तु अपनी भाषण-कुशलता के कारण वह बहुत प्रसिद्ध हो चुका था। जब वह भाषण देने लगता तब श्रोता मन्त्रमुग्ध हो उसके तर्कों को सुनते रहते थे।

उस दिन जब वह प्रमदा के साथ कालेज से लौट रही थी तब प्रमदा ने उससे कहा—"चलो किशोर से मिलते चलें।"

"चलो," उर्मिला ने उत्तर दिया।

मोटर किशोर के बँगले पर आकर रुक गई। किशोर अपने पढ़ने के कमरे में बैठा हुआ भाषण की तैयारी कर रहा था। उसने इस सम्बन्ध मे अपने भाषण को तैयार करने में अनेक पुस्तकों से सहायता ली थी और उसे विश्वास था कि उसका भाषण बहुत ही प्रभावोत्पादक सिद्ध होगा।

प्रमदा को देखते ही वह उठ खड़ा हुआ और कुरसी खिसका कर बोला—"बैठिये।"

प्रमदा और उर्मिला बैठ गई। प्रमदा ने पूछा—"क्या कर रहे थे किशोर तुम?"

"कुछ नहीं, ऐसे ही थोड़ा पढ़ रहा था।"

"तो हम लोगों ने आकर आपके पढ़ने में विघ्न डाला।" उर्मिला ने कहा।

"अरे वाह, आप यह क्या कहती हैं! आपके आने से तो मुझे खुशी ही होती है और फिर मैं कोई ज़रूरी चीज़ थोड़े ही पढ रहा था।"

"ख़ैर, तब ठीक है।"

इधर-उधर की अनेक बातें होती रहीं। प्रमदा ने पूछा—"आप भी तो भाषण-प्रतियोगिता में भाग लेंगे?"

"हाँ, विचार तो अवश्य है।"

"हमारी उर्मिला भी भाग लेगी।" प्रमदा ने कहा।

"उर्मिला! आप!" किशोर क्षण भर तक आश्चर्य से उर्मिला की ओर देखता रहा। फिर बोला—"मुझे तो कभी विश्वास नहीं होता। आप इतना कम बोलती हैं कि मुझे तो विश्वास नहीं होता कि आप कभी भाषण-प्रतियोगिता मे भाग ले सकती हैं। प्रतियोगिता मे भाग लेने के लिये तो चाहिये मुझ-सा वेहया और वातूनी आदमी।"

उर्मिला मुस्करा कर रह गई। प्रमदा ने उत्तर दिया—"तुमने अभी इसे कभी बोलते नहीं सुना; इसीलिये ऐसा ख्याल करते हो। एक बार जब इसका भाषण सुन लोगे तब ऐसा न कहोगे। गत वर्ष भी इसे द्वितीय पुरस्कार मिला था।"

"अच्छा"! किशोर ने आश्चर्य से कहा—"तक तो आप अच्छी वक्ता हैं। पर आप के चेहरे से तो ऐसा नहीं जान पड़ता।"

"चेहरा सब कुछ थोड़े ही बता देता है।" प्रमदा ने उत्तर दिया।

"हाँ, हो सकता है। अच्छा उर्मिला जी, आप विषय के पक्ष में बोलेंगी या विपक्ष मे।"

"मेरा तो विचार है कि यह शिक्षा हमारे लिये कदापि उपयोगी नहीं।" उर्मिला ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया।

"उपयोगी नहीं, आप कहती क्या हैं? ससार के सभी विश्वविद्यालयों में इसी प्रकार की शिक्षा दी जाती है; पर आप कहती हैं यह उपयोगी नहीं!"

"संसार के अन्य देशों से हमारा देश भिन्न है। हमारी अपनी समस्यायें हैं और उन्हीं के अनुकूल हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली बनानी होगी। जो और देशों के लिये लाभदायक है, वह हमारे देश के लिये लाभदायक नहीं भी हो सकता है।"

"क्या आप समझती हैं कि आप तर्कों द्वारा इसे सिद्ध कर सकेंगी?"

"प्रयत्न तो अवश्य ही करूँगी।"

"मैं तो पक्ष मे बोलूँगा। मैंने अपना भाषण करीब-करीब तैयार कर लिया है।"

"अच्छा है।"

किशोर ने भाषण की प्रतिलिपि उर्मिला के सम्मुख रख दी और बोला—"मेरे विचार से आप इसे अपने साथ लेती जायँ। मेरे तर्कों पर विचार करें और उनके उत्तर भी अपने भाषण मे रख लें तो अधिक अच्छा हो।"

उर्मिला ने प्रतिलिपि को बिना देखे ही उत्तर दिया—"आपकी इस कृपा के लिये धन्यवाद। पर मुझे इसकी आवश्यकता न होगी। मैं समझती हूँ, शायद आपके ऐसे कोई तर्क न बचेंगे जिन का उत्तर मैं अपने भाषण मे न दूँ।"

एक लड़की की इस आत्मविश्वासपूर्ण गर्वोक्ति पर किशोर को आश्चर्य हुआ। उसने प्रतिलिपि उसी प्रकार मेज पर से उठा कर रख दी।

इधर-उधर की बाते होने के बाद दोनों सखियाँ घर के लिये चलीं। मोटर पर बैठते ही प्रमदा ने कहा—"तूने ले क्यों नहीं लिया किशोर का भाषण? तेरा कुछ लाभ ही हो जाता।"

"क्या लाभ हो जाता?" उर्मिला ने उत्तर दिया।

"अरे, उसके तर्को का तुझे पता लग जाता।"

"उसके तर्क हो ही क्या सकते हैं? मैं सभी बातों का उत्तर अपने भाषण में दे दूँगी।"

प्रमदा ने कुछ उत्तर न दिया, पर उसे विश्वास था कि किशोर का भाषण एकदम नया है। उसने उसके लिये पूरी तैयारी की है और उर्मिला उसके तर्कों का उत्तर कदापि न दे सकेगी।

प्रतियोगिता के दिन हाल ठसाठस भरा हुआ था। यूनीवर्सिटी के विद्यार्थियों के अतिरिक्त अन्य बहुत से लोग भी उपस्थित थे। हाल में प्रवेश करते ही उर्मिला ने देखा कि किशोर खड़ा है। धीरे से हाथ उठा कर उसने नमस्ते किया। नमस्ते का उत्तर देते हुये किशोर आगे बढ़ आया और बोला—"मिस उर्मिला, आप आ गईं!"

"जी हाँ।"

उर्मिला अपनी जगह पर जा बैठी। थोड़ी देर बाद प्रतियोगिता की कार्यवाही शुरू हुई। कई विद्यार्थियों के भाषण दे चुकने के पश्चात् किशोर का नाम पुकारा गया। वह उठा, बड़े ही रोब के साथ मंच पर पहुँचा, श्रोताओं पर एक दृष्टि डाली और अपना भाषण प्रारम्भ कर दिया। किशोर का भाषण सचमुच बड़ा ही ओजस्वी था। श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो उसके तर्कों को सुनते रहे। उसने विपक्ष की दलीलों का तर्कपूर्ण उत्तर दिया। अन्त में जब वह अपना भाषण समाप्त कर रहा था तब उसने सामने की बेञ्च पर बैठी हुई उर्मिला की ओर गर्व के साथ देखा। उर्मिला ने अपनी आँखे नीची कर लीं।

किशोर के बाद ही उर्मिला का नाम पुकारा गया। उर्मिला घबरा उठी। उसने देखा था, किशोर की वक्तृता का श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। उसके तर्कों को उनके मस्तिष्क से निकाल बाहर करना इतना आसान काम नहीं था। फिर भी उसने सम्पूर्ण साहस एकत्रित करके मञ्च पर पदार्पण किया। उसकी दृष्टि किशोर से मिल गई। वह मुस्करा रहा था।

उर्मिला ने अपना भाषण प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में ही उसने किशोर के एक-एक तर्क को लेकर खूब कटु आलोचना की और फिर उसके बाद अपना भाषण प्रारम्भ किया। उसके भाषण ने किशोर के सारे तर्कों को छिन्न-भिन्न कर दिया। किशोर को उर्मिला से इस प्रकार की आशा न थी। वह एकटक उर्मिला की ओर देख रहा था। भाषण

"आप भी समझती हैं, मैं आपको बनाता हूँ। पर मैं आपसे यह सत्य ही कहता हूँ।"

उस दिन किशोर ने दावत का पूरा प्रबन्ध किया। नौकर को भेज कर अनेक प्रकार के सामान मँगवाये। शाम का भोजन उर्मिला और प्रमदा ने वही किया। उस दिन भोजन करते ही करते प्रमदा ने यह अनुभव किया कि किशोर उसे बात करने का अवसर नहीं देता। उसकी बातों की ओर वह ध्यान भी नहीं देता, बल्कि सारा समय उर्मिला की ही ओर ध्यान देने मे खर्च कर रहा है।

वह कुछ न बोली, पर उसे एक पीड़ा का सा अनुभव हुआ। दावत समाप्त होने के पश्चात् दोनो घर चली आईं। घर आते ही प्रमदा अपने कमरे मे जाकर एक कोच पर लेट गई। उसके अन्दर की नारी ईर्ष्यालु हो उठी। अब तक वह किशोर को केवल अपना ही समझे बैठी थी। परन्तु आज उसे ऐसा जान पड़ा जैसे उर्मिला अब किशोर को उससे छीन लेना चाहती थी। पड़ी-पड़ी वह अपनी परिस्थिति पर विचार करने लगी।

नौकर आया और बोला—"बीबी जी, चाय ले आऊँ?"

"नहीं", प्रमदा ने उत्तर दिया।

नौकर क्षण भर तक आश्चर्य से देखता रहा। वह जानता है—कहीं से भी वापस आने पर प्रमदा चाय अवश्य पीती है। फिर आज चाय के लिये इकार कैसे कर दिया?

प्रमदा ने नौकर की ओर देखा। खीझ कर बोली—"नहीं पिऊँगी, तू खडा क्यो है?"

नौकर तुरन्त बाहर चला गया। घर भर मे खबर पहुँच गई—प्रमदा बीबी गुस्सा हैं।

माँ ने सुना तो तुरन्त ही प्रमदा के कमरे मे पहुँचीं। कोच के सिरहाने बैठ गई और मस्तक पर हाथ फेरते हुये पूछा—"क्या बात है बेटी?"

सहानुभूति का सहारा पाकर उसके आँसुओं का बाँध टूट गया। मोती ऐसे आँसू उसके गालों पर ढुलकने लगे।

माँ ने प्रमदा का सिर अपनी गोद में रख लिया, बहुत पूछा, पर प्रमदा न बोली। अन्त मे जब रो चुकने के बाद उसका जी कुछ हलका हुआ तब उसने कहा—"माँ, मेरा जी न जाने क्यों घबरा रहा है।"

माँ ने उठा कर उसे पलग पर लिटा दिया। नौकर को बुला कर बैरिस्टर साहब के पास कहला भेजा। वे अपने दफ्तर मे बैठे, किसी मुकदमे पर विचार कर रहे थे। प्रमदा की तबियत ठीक नहीं है, सुनते ही तुरन्त कमरे मे आये, हाल पूछा और बोले--"घबराने की कोई बात नहीं, मैं डाक्टर बुलाता हूँ।"

उन्होंने तुरन्त ही ड्राइवर को मोटर लेकर जाने को कहा। प्रमदा को डाक्टर की आवश्यकता नहीं थी; किन्तु वह जानती थी कि बिना इसके उसे छुटकारा भी तो नहीं मिल सकता।

डाक्टर ने आकर देखा, कहा—"कोई खास बात नहीं है। इन्हे किसी बात से सदमा पहुँचा है। केवल घबराहट है। मैं दवा भिजवाता हूँ, अभी ठीक हो जायँगी। आप इन्हे आराम करने दीजिये।"

दवा पिला कर माँ ने कहा—"अच्छा, अब तुम सो जाओ।"

"अच्छा, तुम जाओ माँ, अब मैं सो जाऊँगी। अब मेरी तबियत ठीक है।" प्रमदा ने माँ से कहा।

माँ चली गई। परन्तु प्रमदा को नींद नही आई। वह सोचती हुई पड़ी रही।

दूसरे दिन प्रमदा कालेज न गई। उर्मिला के यहाँ उसने नौकर भेज कर कहला दिया कि वह तीन-चार दिन कालेज न जा सकेगी।

उस दिन दस बजे जब उर्मिला कालेज जा रही थी तभी उसे मार्ग

में किशोर मिल गया। वह भी कालेज जा रहा था। उसे अकेली, ताँगे पर जाते देख कर पूछा—"आज प्रमदा नहीं है क्या ?"

"आज उनकी तबियत खराब है, इसलिये कालेज न जायँगी।" उर्मिला ने उत्तर दिया।

"कल तो बिलकुल अच्छी थीं।"

"हाँ, जाने क्या बात हो गई।"

बातें होती रहीं, परन्तु यूनिवर्सिटी निकट आते ही किशोर ने उर्मिला का साथ छोड़ दिया।

कालेज के बाद जब उर्मिला घर के लिये लौट रही थी, तभी उसने देखा कि किशोर अपने बँगले के दरवाजे पर खड़ा है। उर्मिला को देखते ही उसने कहा—"आइये न, थोड़ी देर के लिये।"

उर्मिला 'नहीं' न कर सकी। ताँगा रुक गया और उर्मिला ने किशोर के कमरे में प्रवेश किया।

उस दिन किशोर ने उर्मिला के लिये बड़े ही आडम्बर के साथ चाय तैयार कराई थी। चाय पीते हुये उर्मिला ने कहा—"आज तो, मालूम होता है, आपने खास तौर पर यह आयोजन किया था।"

"हाँ, आप ठीक कह रही हैं। मैं जानता था कि आप इधर से ही लौटेंगी। समय भी मुझे मालूम ही था। इसीलिये तो आपकी प्रतीक्षा में बाहर खड़ा था।"

"अरे तो आप मेरी प्रतीक्षा में बाहर खड़े थे! व्यर्थ ही आपने यह कष्ट उठाया। सुबह ही कह दिये होते।"

"इच्छा तो मेरी थी; पर मैंने सोचा, आप शायद अकेले आना पसन्द न करें।"

उर्मिला ने कुछ उत्तर न दिया। किशोर को उसने देखा, उसकी आँखें कुछ कहना चाहती थीं।

क्षण भर चुप रह कर उसने कहा—"उर्मिला जी, आप से मैं बहुत

कुछ कहना चाहता था; परन्तु अवसर ही न मिलता था। इसीलिये आज मैंने आपको कष्ट दिया।"

"कहिये, आप क्या कहना चाहते हैं।" उर्मिला ने पूछा। पर उसका हृदय जैसे सब कुछ जान गया। किशोर की आँखों ने ही सब कुछ उसे बता दिया।

क्षण भर चुप रह कर किशोर ने कहा—"उर्मिला, तुम्हे देख कर मेरे हृदय को बहुत शाति मिलती है। मैं नहीं जानता कि मैं तुम्हारी ओर क्यों आकर्षित होता जा रहा हूँ। तुमसे आज स्पष्ट बताता हूँ, इसका पता शायद प्रमदा को भी नहीं है। बैरिस्टर साहब मेरे साथ प्रमदा के विवाह के सम्बन्ध में बातचीत चला रहे हैं। जानता हूँ, वह तय भी हो जायगी। मेरे पिता उनकी बात को अस्वीकार नहीं कर सकते, पर मुझे यह पसन्द नहीं है। पहले दिन जब मैंने प्रमदा को देखा था, तब उसकी ओर आकर्षित भी हुआ था और यह भी जानता हूँ कि वह मुझसे प्रेम भी करने लगी है, पर उसके साथ विवाह करके मैं सुखी कभी नहीं रह सकता।"

"तो आप स्वतत्र हैं, आप विवाह न करें।" उर्मिला ने उत्तर दिया। पर उसका हृदय इस समय न जाने कैसा हो रहा था।

"उर्मिला, यह तो मैं कर सकता हूँ। पर यदि तुम मुझ पर कृपा करो तो।" किशोर की वाणी मे याचना थी।

"मैं क्या कर सकती हूँ ?"

"मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।" किशोर ने काँपते हुये कहा।

उर्मिला उठ खड़ी हुई, बोली—"किशोर बाबू, मुझे आप से इस व्यवहार की आशा नहीं थी..."

किशोर अपराधी सा खडा रहा। यह ठीक है कि उसका प्रेम प्रकट करने का ढग ठीक नहीं था, पर उसे अपने प्रेम पर विश्वास था। उर्मिला का तमतमाया चेहरा देख कर उसने कहा—"मिस

उर्मिला, मुझे क्षमा करें ! मैंने आपको अपमानित करने के उद्देश्य से कुछ नहीं कहा। परन्तु यदि आपने इसमें अपमान समझा है, तो मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ।"

किशोर की आँखों में आँसू आ गये। उर्मिला को भी दया आई, परन्तु ऊपर से कठोर बनी वह कमरे से बाहर जाकर ताँगे पर बैठ गई। ताँगा चल पड़ा। उर्मिला ने देखा, किशोर फाटक पर खड़ा हुआ आँखो से आँसू पोंछ रहा था॥

उर्मिला जब घर पहुँची तो उसके हृदय में तूफान उठ रहा था। उसे ऐसा लग रहा था कि उसने व्यर्थ ही किशोर के साथ इतनी कठोरता का बर्ताव किया। प्रेम क्या ठुकराने की वस्तु है! उसे आज जान पड़ा जैसे अन्तर के किसी कोने मे वह किशोर की प्रतिमा को कभी आसीन करा चुकी थी, अब वही प्रतिमा उभर कर उसके सम्पूर्ण जीवन मे बसने के लिये तैयार हो गई। उर्मिला सोचने लगी—तो क्या सचमुच ही वह किशोर से प्रेम करती है। पर किशोर तो प्रमदा से प्रेम करता है। कभी उसने उर्मिला की तरफ अपना आकर्षण प्रकट नही किया। हाँ, कभी-कभी उसने प्रमदा की दृष्टि बचा कर उसे अवश्य देखा है। उस दृष्टि की याद कर उर्मिला काँप उठी। कितना प्रेम, कितनी याचना, उसकी उन नज़रों में छिपी हुई होती थी!

पर यदि वह किशोर के प्रेम को स्वीकार भी कर लेती तो क्या होता! प्रमदा उसकी जीवन-सहेली है। क्या यह उसके साथ विश्वास-घात न होता। वह सब कुछ कर सकती है, पर अपनी एक सखी के साथ ऐसा विश्वास-घात करने के लिये उसका हृदय तैयार न हुआ। सारी रात उसने इसी उधेड़बुन मे काटी। दूसरे दिन कालेज मे भी उसका मन न लगा।

अन्त मे उसने निश्चय किया कि वह किशोर के पास जायगी।

उनसे अपने दुर्व्यवहार के लिये क्षमा माँगेगी और कहेगी कि वह प्रमदा के साथ विश्वास-घात नहीं कर सकती।

साहस करके उसने ताँगा किशोर के बँगले के दरवाजे पर रोकने के लिये कहा।

ताँगा रुकने की आवाज़ सुन किशोर बाहर आया। उर्मिला ताँगे से उतर रही थी। वह मूर्त्ति बना खड़ा रहा। जब उर्मिला उसके निकट आ गयी तब उसके हाथ नमस्कार करने को उठ गए।

नमस्कार का उत्तर देकर बिना कुछ कहे उर्मिला किशोर के कमरे में जाकर बैठ गई। वह हाँफ-सी रही थी। किशोर भी दूर एक कुरसी पर बैठ गया। उर्मिला कुछ कहना चाहती थी, पर उसकी ज़बान न खुल रही थी।

किशोर ने शाति भग करते हुए कहा—"मिस उर्मिला, कल के व्यवहार के लिये आप मुझे क्षमा करें। मुझे न जाने क्या हो गया था!"

उर्मिला की आवाज खुली—"आप मुझे अधिक लज्जित न करें। मैं कल के अपने व्यवहार पर स्वय लज्जित हूँ। और आपसे क्षमा माँगने आयी हूँ।"

किशोर चुपचाप सुनता रहा। उसने कुछ उत्तर न दिया। उर्मिला ने क्षण भर रुक कर फिर कहा—"देखिये किशोर बाबू! आप मेरी परिस्थिति का अनुभव करें। प्रमदा मेरी अत्यन्त प्रिय सखी है, बचपन की सहेली है और उसके लिये मैं बड़ा से बड़ा त्याग करने को तैयार हूँ। वह आपको हृदय से प्रेम करती है। आपका उससे विवाह भी निश्चित-सा हो गया है। ऐसी दशा में आप मेरा क्या कर्त्तव्य समझते हैं?"

क्षण भर तक किशोर उर्मिला की ओर देखता रहा, फिर बोला—"मैं आपको किसी बात के लिये बाध्य नहीं करता। मैं आपसे प्रेम करता हूँ और सदैव करता रहूँगा।"

"परन्तु क्या यह ठीक होगा ?"

"मनुष्य हर बात को बुद्धि की तराजू पर ही नहीं तौलता, उर्मिला, हृदय भी कोई चीज है।"

"किन्तु यदि मैं आप से विवाह करने को तैयार नहीं हूँ तो।"

"पर आप मुझे प्रेम करने से तो रोक नहीं सकतीं।"

उर्मिला ने कुछ उत्तर न दिया। वह तुरन्त चली आयी। किशोर ने भी उसे रोकने का प्रयत्न न किया।

दो-तीन दिन बाद प्रमदा कालेज आने लगी, परन्तु उर्मिला ने उससे कुछ न कहा। वह स्वयं प्रमदा के साथ कालेज न जाकर अपने ताँगे से जाने लगी ताकि उसे किशोर के सम्मुख जाना ही न पडे। क्लास में भी प्रमदा से उसकी बातें कम होतीं।

कई दिन बाद एक दिन जब वह क्लास से निकल कर ताँगे पर बैठने जा रही थी तभी प्रमदा ने उसे पुकारा। उर्मिला रुक गई। लौट कर प्रमदा के पास आई और बोली—"क्या है प्रमदा ?"

"तुझ से कुछ कहना है। इधर तू बहुत कटी-कटी रहती है।"

"मैं क्यों कटी-कटी रहती हूँ ? तू स्वयं ही नहीं बोलती।"

"अच्छा तो, आओ मोटर मे बैठ जाओ, घर पर बातें करेंगे।"

"और यह ताँगा जो है ?"

"इसको जाने को कह दे।"

ताँगे तो जाने को कह दिया गया। उर्मिला मोटर में जा बैठी। राह भर प्रमदा चुप रही। उर्मिला कुछ बातचीत का सिलसिला प्रारम्भ करने के लिये कुछ कहती भी, तो वह ऐसा उत्तर देती कि सिलसिला बिलकुल ही टूट जाता।

बॅगले पर पहुँच कर उर्मिला को साथ लिये हुये प्रमदा अपने कमरे में चली गयी। चाय पीते हुये प्रमदा ने कहा—"उर्मिला तू जानती है, किशोर से मेरी लड़ाई हो गई।"

"लड़ाई !" उर्मिला ने आश्चर्य से पूछा ।

"हॉ लडाई ! उन्हे मैंने प्यार किया था, उसी का यह परिणाम है ।"

"क्यो, लडाई क्यों हो गई ?"

"लड़ाई इसलिये हो गई कि वे मुझे प्यार नही करते थे । मेरे साथ वे केवल मनोरजन कर रहे थे । पिता जी मेरे विवाह की बातचीत उनसे चला रहे थे । उनके पिता ने स्वीकार भी कर लिया था पर अन्त मे उन्होंने स्वय कह दिया कि वे विवाह न करेंगे ?"

"तू ने पूछा, वे क्यों न विवाह करेंगे ?"

"हॉ, उन्होंने उत्तर दिया कि वे उसी से विवाह करेंगे जिसको वे प्रेम कर सके ।"

क्षण भर चुप रह कर प्रमदा ने कहा, "मैं जब उस दिन तेरे साथ उनके यहॉ गई थी तब मैंने समझा था कि वे तुझसे प्रेम करने लगे हैं । इसी से मुझे ईर्ष्या भी हुई थी, पर वह मेरी भूल थी ।"

उर्मिला ने उसके बाद की सारी घटनाऐ बता दीं । प्रमदा आश्चर्य से सब कुछ सुनती रही । अन्त में उर्मिला के गले से लिपट कर बोली—"तू ऐसी है, उर्मिला, मैंने यह नहीं समझा था । तू उनसे विवाह कर ले ।"

"पर मैं नही कर सकती !" उर्मिला ने दृढ़ता से कहा ।

"क्यों, तू उन्हे प्यार नहीं करती ?"

"नहीं ।"

प्रमदा चुप रही, कुछ उत्तर नहीं दिया ।

उस दिन के बाद दोनों सखियाँ फिर पहले सी ही एक हो गई । परीक्षा निकट थी इसलिये किसी को भी किशोर की सुधि न रही । किशोर ने भी इस ओर ध्यान न दिया । वह भी अपनी परीक्षा की तैयारी मे लगा हुआ था ।

परीक्षा मे उर्मिला प्रथम श्रेणी में पास हुई । पिता की आगे पढ़ाने

की इच्छा न थी। उर्मिला ने किसी स्कूल में नौकरी करने का निश्चय पिता पर प्रकट किया। इसी बीच में उसके पिता की बदली बनारस की हो गई। सौभाग्य से वहीं उर्मिला को एक स्कूल में नौकरी भी मिल गई। उर्मिला को तो मानो मन की मुराद मिल गई।

प्रमदा के पत्र बहुधा आते रहते थे। उसने लिखा था, किशोर किसी भी प्रकार विवाह करने को तैयार नहीं होता। पिता जी ने भी उसके साथ मेरा विवाह न करने का निश्चय कर लिया है और अब वे किसी दूसरे लड़के की खोज में हैं।

कभी-कभी जब उर्मिला अकेली बैठती तब वह सोचा करती—काश, वह किशोर और प्रमदा के बीच में न आती। किशोर को प्रमदा से दूर करने के लिये वह अपने को ही उत्तरदायी समझती थी। प्रमदा ने लिखा था—उसने अब विवाह न करने का निश्चय कर लिया है। परन्तु उर्मिला यह भी जानती थी कि प्रमदा का यह निश्चय तभी तक के लिये है जब तक उसका विवाह किसी जगह निश्चित नहीं हो रहा है।

धीरे-धीरे उसे मालूम हुआ कि प्रमदा बीमार रहने लगी है। यद्यपि प्रमदा ने अपने पत्र में कभी इस सम्बन्ध में कोई बात नहीं लिखी थी, परन्तु उसकी माँ के पत्र से मालूम हुआ कि वह बीमार रहती है। पढ़ना उसने छोड़ दिया है। उर्मिला को उसकी इस दशा पर बहुत शोक होता। कई बार उसने सोचा कि वह किशोर को इस सम्बन्ध में लिखे, परन्तु उसका कभी साहस न होता।

उर्मिला का कुटुम्ब जिस घर में रहता था उसके सामने ही एक और बड़ा मकान था। मकान में कोई और परिवार रहता था। परन्तु ऊपर के एक कमरे में एक विद्यार्थी रहता था। देखने में वह बिलकुल सीधा-सादा तथा आडम्बर हीन-सा दिखाई पड़ता था। उर्मिला का कमरा उसके कमरे के ठीक सामने पड़ता था। उर्मिला जब अपना

खिड़की से उस कमरे की ओर देखती तो खद्दर की मोटी धोती और एक बनियाइन पहिने वह एक युवक को पढते ही पाती। उसने इस युवक को अपनी खिड़की की ओर देखते कभी नहीं देखा था।

उसे इस युवक पर बड़ा आश्चर्य होता। जाने उसे कैसा पढ़ना रहता है कि सदैव ही पढता रहता। उसने उस युवक को किसी से बोलते-चालते नहीं देखा और न उसके घर कोई आता ही दिखायी पड़ता है। सुबह जब वह स्कूल जाने लगती है तब वह देखती है कि वह युवक मुँह में नीम की दातुन दबाये छज्जे पर टहलता रहता है। किस समय वह कालेज जाता है यह उसके लिये एक रहस्य था।

युवक जितना ही उसकी ओर से उदासीन रहता था उतनी ही उर्मिला की उत्कठा उसकी ओर से बढ़ती जाती। वह बार-बार उसका ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न करती, परन्तु कभी सफल न होती। वह बहुधा अपनी खिड़की पर आकर बैठ जाती और बाहर देखा करती, पर युवक की दृष्टि कभी किताब पर से न हटती।

कभी-कभी वह सोचती, अजीब आदमी है, जिसे दुनिया की खबर नहीं। किताबें पढ़ना ही उसका जीवन है। उसने अपनी पढ़ने की मेज़ खिड़की के निकट लगा ली। स्कूल से आकर वह खिड़की के सामने बैठ कर पुस्तक खोल लेती, परन्तु उसका चित्त पढने में न लगता। पुस्तक के पन्नों पर भी उसे उसी युवक की तस्वीर दिखाई पड़ती। कभी-कभी तो वह अपने ऊपर खीझ उठती। जब उन्हे इसकी परवाह ही नहीं है, तब फिर मैं क्यों उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया करती हूँ।

एक दिन जब वह स्कूल से वापस आयी, तो अपने कमरे में पहुँचते ही देखा कि सामने वाले मकान की खिड़की खुली है, परन्तु पढ़ने वाला न दिखाई दिया। आज के इस परिवर्त्तन पर उसे आश्चर्य हुआ। छः महीने के लगभग उसे इस मकान में आये हो गये, परन्तु अभी तक

उसने कभी खिड़की खाली नहीं देखी थी । आज यह पहला ही अवसर था, जब वह यह देख रही थी कि खिड़की पर कोई नहीं है ।

वह आकर अपनी खिड़की पर खडी हो गई । खिडकी पर से सामने के कमरे का दृश्य साफ दिखाई पड़ता था । उसने देखा, युवक चार-पाई पर लेटा है । एक हाथ सिर पर रखे हुये है ।

उर्मिला ने सोचा—मालूम होता है, कुछ तबियत खराब है । वह चिन्तित हो उठी । कैसे उसका समाचार मालूम करे ? पर फिर उसने सोचा, मैं उसकी कौन हूँ जो उसका हाल-चाल जानने का प्रयत्न करूँ । उसने कभी मेरी ओर देखा भी तो नहीं । पर जितना ही वह उस ओर ध्यान न देना चाहती थी, उतना ही उसका जी घबड़ाता । अन्त में उसने निश्चय किया कि वह किसी न किसी प्रकार से उसका समाचार अवश्य ही ज्ञात करेगी ।

घर मे एक लड़का नौकर था । उर्मिला ने उसे बुलाया । मोहन ने कमरे मे आते ही पूछा—"क्या है बीबी जी ?"

"देख, तू मेरा एक काम करेगा ।"

"क्या ?"

"सामने वाले कमरे के बाबू जी को पहिचानता है ।"

"जी हाँ, वही महात्मा जी न ?"

"नहीं महात्मा जी नहीं । वे जो इस कमरे मे रहते हैं ।" उर्मिला ने कमरे की ओर अँगुली से इशारा करते हुये पूछा ।

"हाँ, हाँ, बीबी जी, उसी मे रहते हैं । उन्हे सब महात्मा जी ही कहते हैं ।"

उर्मिला को हँसी आ गई । सचमुच वे महात्मा ही होने के योग्य हैं । कितने सीधे और सरल हैं । सिवा पुस्तकों के उनका कोई और साथी नहीं है । उसने हँसी दबाते हुये जिज्ञासा के भाव से पूछा—"भला उन्हे सब महात्मा जी क्यों कहते हैं ?"

"जी, वे पूरे महात्मा हैं। खद्दर पहिनते हैं, लेक्चर देते हैं।" लड़के ने उत्तर दिया।

"अच्छा तो उनके पास यह कागज ले जा और जो कुछ वह कहे, उसे आकर बताना।"

कागज़ उठा कर उर्मिला ने लिख दिया—'आपकी तबियत कैसी है?' फिर कागज लड़के को देते हुये कहा—"देख, यह न बताना कि किसने दिया है।"

"अच्छा", कह कर लड़का चला गया। उर्मिला ने खिड़की का पर्दा खींच लिया और खड़ी हुई लड़के के पहुँचने की राह देखने लगी।

नौकर ने पहुँच कर लड़के के हाथ मे कागज़ का टुकडा दे दिया। उसने पढा, फिर एक बार सिर उठा कर खिड़की से बाहर देखा। पर्दे की आड़ में उर्मिला ने देखा, उसकी आँखें जैसे कुछ खोज रही हों। फिर उसने अपना सिर तकिये पर रख दिया। मेज पर से हाथ बढ़ा कर फाउएटेन-पेन उठाया और कुछ लिख कर कागज़ नौकर के हाथ में दे दिया।

नौकर ने कागज लाकर उर्मिला को दिया। लिखा था—"ठीक है, केवल जुक़ाम हो गया है। धन्यवाद।"

उर्मिला ने नौकर से पूछा—"क्या कर रहे थे?"

"लेटे थे।" नौकर ने उत्तर दिया।

उसने आलमारी खोली, एक सिर दर्द की दवा और जुकाम की दवा की शीशी लड़के को देते हुये कहा—"ले जाओ, उन्हे दे देना।"

लड़का फिर चला गया। उर्मिला का खिड़की पर जाने का साहस न हुआ। वह सोच रही थी, पता नहीं उसने ठीक किया या नहीं। वे क्या सोचेंगे? यदि उन्हे पता लग गया कि मैंने यह सब भेजा था, तो वे मेरे सम्बन्ध मे क्या सोचेंगे। उसे पश्चात्ताप होने लगा। फिर ख्याल आया, उन्हे इसका क्या पता कि किसने भेजा है?

पर नहीं, वे पहली ही बार जान गये थे। उन्होंने सिर उठा कर खिड़की की ओर देखा भी था, पर किसी को न देख कर सिर तकिये पर रख लिया था। वे अवश्य ही जान गये हैं कि मैंने पूछा था। उसका हृदय काँप उठा। उसने सोचा कि व्यर्थ ही उसने यह काम किया, पर अब तो नौकर जा चुका था।

वह कुरसी पर बैठ गई। हृदय में धड़कन हो रही थी। इसी समय लडका वापस आ गया। उर्मिला ने सम्पूर्ण साहस बटोर कर पूछा—"कुछ कहा?"

"कुछ नहीं, दवा ले ली, कहा—व्यर्थ ही तुम्हारी बीवी जी ने कष्ट उठाया। मैं तो जुकाम में कोई दवा इस्तेमाल ही नहीं करता। पर उन्होंने भेज दी है, इसलिये इस्तेमाल करूँगा ही।"

"हूँ, अच्छा, जा, अपना काम कर।"

नौकर चला गया पर उर्मिला सोचती बैठी रह गई।

उस दिन के बाद उर्मिला की खिड़की का पर्दा कई दिन तक नहीं हटा और न उसने खिड़की के सामने बैठ कर पढ़ने के लिये पुस्तक ही खोली। नौकर से हाल मिल जाता था। वे उसे रोज बुलाते थे। कोई न कोई काम करने को कह देते। उर्मिला ने उससे कह रखा था, वे जो कुछ भी कहे तुरन्त कर देना, और जैसा हाल हो मुझे रोज बताना। पर कभी-कभी वह खिड़की के पास जाकर खडी हो जाती और पर्दे की आड़ से देखती।

वह कई दिन तक बुखार में पडे रहे। नौकर का ज्यादा समय उन्हीं के यहाँ बीतता, परन्तु किसी को इसका कुछ भी पता न था। तीन-चार दिन बाद एक दिन उर्मिला ने नौकर से पूछा—"किसी डाक्टर की दवा करते हैं?"

"जी नहीं, मैंने तो कहा कि किसी डाक्टर को बुलाइये पर कहते हैं, डाक्टर क्या करेगा। जब अच्छा होना होगा तभी अच्छा होऊँगा।"

"अजीब आदमी है !"

उर्मिला ने कागज़ उठा कर लिखा—"डाक्टर को बुला लीजिये।" और कागज मोड़ कर लड़के को दे दिया।

लड़का चिठ्ठी लेकर चला गया। जब वह बडी देर तक न आया, तब उर्मिला का हृदय उद्विग्न हो उठा। उसने खिडकी के पर्दे की दराज से देखा। वह लेटा हुआ था, पर नौकर का पता नहीं था।

"कहाँ चला गया ?" उर्मिला ने अपने मन मे सोचा। इसी समय उसने देखा, नीचे एक मोटर आकर रुकी और नौकर के साथ एक सूट-बूट धारी व्यक्ति उतरा। उर्मिला ने तुरन्त पहिचान लिया—डाक्टर कपूर थे। उसके यहाँ भी जब कभी कोई बीमार पड़ता है तब डाक्टर कपूर ही बुलाये जाते हैं। नौकर को उनकी दूकान मालूम है। मालूम होता है, उसे ही डाक्टर को बुलाने को कहा गया होगा और वह कपूर को बुला लाया।

उर्मिला को बडी प्रसन्नता हुई। उसकी बात का यह अज्ञात युवक कितना ध्यान रखता है। कभी कोई बात टालना तो जैसे जानता ही नहीं। डाक्टर साहब जैसे ही उसे देख कर मकान से बाहर निकले कि उर्मिला के पिता ने बैठक से उनको देखा। बाहर आकर नमस्कार किया; पूछा—"कहिये, डाक्टर साहब कैसे आये ?"

"एक मरीज़ को देखने आया था।"

"किसके यहाँ ?"

"यही सामने वाले मकान मे कोई विद्यार्थी है।" डाक्टर साहब ने उत्तर दिया। थोड़ी देर तक दोनों जनो मे बाहर ही खडे-खडे बाते होती रहीं और फिर वे चले गये।

और जब नौकर आया तब उर्मिला ने उससे पूछा—"डाक्टर साहब क्या कहते थे ?"

"जी, कहते थे, मियादी बुखार है।"

"दवा के लिये क्या कहा ?"

"नुस्खा लिख दिया है। मैं लेने जा रहा था, पर उन्होंने कहा, पहले अपनी बीवी जी को डाक्टर के आने का हाल बता आओ, तब जाओ।"

"अच्छा, तो अब जा, तू दवा ला दे!"

नौकर चला गया। उर्मिला सोचने लगी, टाइफाइड है, तब तो इन्हे अच्छे होने मे कई दिन लगेगे, परन्तु यहाँ इनकी देख-भाल करने वाला कोई नहीं है। आखिर इस तरह कैसे चलेगा। टाइफाइड के मरीज को तो आराम से पड़ा रहना चाहिये न। उसका हृदय चिन्ताओं का केन्द्र-स्थल बन गया।

उससे निश्यच किया, वह स्वयं ही जायगी और उनसे कहेगी कि आपके जो हो उन्हे बुला लीजिये, नही तो आप ज्यादा दिन बीमार रहेगे। पर वह जाय कैसे ? आखिर वे क्या कहेगे; परन्तु फिर हृदय न माना, सोचा वे चाहे जो समझे, पर मैं जाऊँगी अवश्य।

नौकर दवा लेकर आ गया। उर्मिला ने उससे पूछा—"और कुछ कहते थे ?"

"जी नहीं, लेकर चुपचाप दवा पी ली थी।"

उर्मिला ने अधिक प्रश्न न किये पर उसका हृदय जाने कैसा हो रहा था। वह सोच रही थी, उनकी तबियत न जाने कैसी होगी। खिड़की का पर्दा उसने हटा दिया। बाहर सड़क पर ठीक उसकी खिड़की के सामने बिजली का खम्भा था। बिजली के प्रकाश के आर-पार देख कर उसने उस कमरे में कुछ देखने का प्रयत्न किया, परन्तु वहाँ तो बिलकुल अन्धकार था। उसे आश्चर्य हुआ कि इतनी जल्दी वे सो कैसे गये। शाम होते ही भला कैसे सो गये ?

अपने कमरे से वह नीचे आई। आँगन मे देखा, माँ रसोई बना रही थी। पिता जी इस समय घूमने चले जाते हैं। बाहर के दरवाजे

पर आकर वह क्षण भर खडी रही। फिर सड़क के उस तरफ वाले मकान की सीढ़ियाँ चढ़ने लगी।

ऊपर के कमरे के दरवाजे पर पहुँच कर उसके पैर रुक गये। आगे उससे बढ़ा न जा रहा था। अन्दर से दरवाज़ा बन्द न था, केवल दोनों किवाड़ भिड़ा दिये गये थे।

कितनी देर तक वह दरवाजे पर खडी रही, इसका उसे पता नहीं। फिर सहसा उसके पैर उसे अन्दर की ओर ले गये। दरवाजा खुलते ही उसने पूछा—"मोहन है क्या ?"

उर्मिला की आवाज बन्द हो गई। बडी कठिनाई से उसने कहा—"जी नहीं।"

रोगी ने एक उसाँस ली, कहा—"अच्छा, मेज पर दियासलाई और लैम्प होगा।"

अँधेरे मे टटोल कर उसने दियासलाई ली और लैम्प जला दिया। रोगी एकटक उसकी ओर देख रहा था। आँख मिलते ही उर्मिला लज्जा से गड़ गई। आँखें नीची हो गईं और वह कुछ बोल न सकी। खड़ी-खड़ी अपने पैरों से ज़मीन कुरेदती रही।

रोगी ने कहा—"आपने व्यर्थ ही कष्ट किया। आपकी इस कृपा से मैं कभी उऋण न हो सकूँगा।"

उर्मिला चुप थी।

रोगी ने फिर कहा—"खड़ी क्यो हैं ? बैठ जाइये, कुरसी पर।"

उर्मिला कुरसी खिसका कर बैठ गई।

"आप तो बड़ी दयालु हैं।"

जवाब नदारद।

"आप बोलती क्यों नही ?"

"जी..." बड़ी कठिनाई से उर्मिला ने उत्तर दिया। उसकी दृष्टि रोगी पर पड़ी। कितना क्षीणकाय वह हो गया था। चेहरे की काति जाती

रही थी। उसने दृष्टि हटा कर इधर-उधर फेरी। कमरा सादा था, पर सजावट में अपनी विशेषता रखता था। देश के सभी नेताओं की तस्वीरें दीवालों पर लगी थीं। एक ओर एक छोटी-सी आलमारी रखी थी जिसमें मोटी-मोटी किताबें रखी थीं। एक सूटकेस एक कोने मे रखा था। क्षण भर मे ही उसने कमरे भर का निरीक्षण कर लिया।

"आपकी आज्ञानुसार मैंने डाक्टर बुलाया था।" रोगी ने कहा।

"जी हाँ।"

"वह टाइफाइड बताता है।"

"आप अपने घर वालों को बुला लें, तो ज़्यादा अच्छा हो।"

"बुला तो लिया।"

उर्मिला चौंकी। युवक मुस्करा रहा था।

क्षण भर बाद उसने कहा—"देखिये, मेरा अपना कहने वाला कोई नहीं है। जो अपना है, वह बिना बुलाये ही आ गया है।"

यह कह कर उसने उर्मिला की ओर एक भेद-भरी दृष्टि डाली। उर्मिला को अनुभव हुआ जैसे उसे कोई बड़ी निधि मिल गई हो।

रोगी ने फिर कहा—"आप मेरी जितनी चिन्ता करती हैं, वह कोई अपना भी तो नहीं कर सकता। फिर आपके रहते हुये मुझे किसी और को खोजने की क्या आवश्यकता है?"

उर्मिला एक टक उसकी ओर देखती रही; कहा—"आपको जब किसी बात की आवश्यकता हो, नौकर से कह दीजियेगा।"

"अच्छी बात है। पर आप भी . " वह कुछ कह न सका। उर्मिला समझ गई, बोली—"मैं भी अवसर पाकर आ जाया करूँगी।"

"आपकी कितनी कृपा है!"

उर्मिला उठ कर चली आई। घर आकर उसने नौकर को बुलाया, पूछा—"डाक्टर साहब ने खाने को क्या बताया है।"

लड़के ने बता दिया।

"और पानी पका कर देने को कहा है ?"

"हाँ ।"

उर्मिला ने मेज की दराज से पाँच रुपये का नोट निकाल कर लडके को देते हुए कहा—"देख, कुछ थोडा फल, ग्लूकोज आदि सब लेकर उन्हे दे आ । और फिर आकर पानी भी गरम कर दे आना ।"

नौकर चला गया तो उर्मिला बैठ कर सोचने लगी । इस अज्ञात युवक के प्रति वह इतना आकर्षित क्यों हो रही है । उसने अब तक समझा था कि वह कोई विद्यार्थी है, पर कमरे को तो देखने से जान पडता है कि वह कोई साधारण विद्यार्थी नहीं है । कितनी बडी-बडी किताबें रखी थीं । पूरा देश-भक्त है, तभी तो लोग इन्हे महात्मा जी कहते हैं । परन्तु एक ही हफ्ते के बुखार ने कैसा कमज़ोर बना दिया है ।

नौकर उस दिन बहुत देर तक नहीं लौटा । माँ बिगड़ रही थीं—बेवकूफ जाने कहाँ, काम के वक्त चला जाता है । उर्मिला ने सोचा आते ही माँ बिगड़ेंगी उस पर, इसलिये पुकार कर कहा—"माँ, मैंने उसे काम से भेजा है ।"

माँ चुप हो गई, पर उर्मिला सोचने लगी, यदि माँ को मालूम हो जाय कि मैंने उसे कहाँ भेजा है तो वे क्या कहेंगी । उसका हृदय काँप उठा । किन्तु उसने अपने हृदय को फिर सान्त्वना दी, माँ को पता ही न लगेगा ।

जब नौकर ने आकर फिरते पैसे वापस किये तब उसमें से दो आने नौकर को देते हुए उर्मिला ने उससे पूछा—"बाबू, कुछ कहते थे ?"

"जी हाँ, कहते थे, तूने उनसे रुपये क्यों लिये ? मुझसे ले जाता । मुझको पैसे दे रहे थे, फिर जाने क्या सोचा । रुपये तकिये के नीचे रख दिए ।"

"अच्छा जा, पानी गरम करके दे आ।"

नौकर चला गया।

दूसरे दिन सुबह जब उर्मिला उठी, तो उसने देखा, सामने वाले कमरे की खिड़की खुली है और वह चारपाई पर पड़े-पड़े एक पुस्तक पढ रहा है। इतनी बीमारी में भी पुस्तक नहीं छूटती!—उसने सोचा। फिर ध्यान आकर्षित करने के लिये एक झटके से खिडकी का दरवाजा खोल दिया। उसने वक्षःस्थल पर किताब रख ली और मुँह फेर कर देखा। आँखों मे कृतज्ञता झलक रही थी। हाथ उठा कर उसने नमस्कार किया।

उर्मिला ने उत्तर मे हाथ जोड़ लिये और धीरे से कहा—"पुस्तक न पढ़िये।"

तुरन्त ही उसने पुस्तक बन्द करके मेज पर रख दी। क्षण भर तक देखता रहा, फिर शायद थकान और कमज़ोरी के कारण सिर तकिये पर रख दिया। उर्मिला खिड़की पर से हट गई।

उस दिन उर्मिला स्कूल न गयी। छुट्टी के लिये अर्जी भेज दी। माँ ने पूछा, तो कह दिया—"आज कुछ काम करना है, घर पर ही रह कर करूँगी।"

जब वह अकेली रह गई, तब एक बार उसने फिर सोचा, आखिर आज वह स्कूल क्यो नहीं गई। उसकी तबियत बिलकुल खराब नही है फिर भी वह स्कूल नहीं गई! आखिर घर पर रहने से लाभ ही क्या? क्या वह उसकी कोई सहायता कर सकती है। घटे दो घटे वह उसके पास बैठ भी तो नहीं सकती। फिर स्कूल न जाने से लाभ?

उसका हृदय कुछ विह्वित-सा हो रहा था। वह अनुभव कर रही थी कि वह उस युवक से प्रेम करने लगी है। उसका हृदय उद्विग्न हो उठा। वह आकर खिड़की पर खड़ी हा गई। वह अब भी उसी प्रकार पड़ा था। पता नहीं, उसने अब तक कुछ खाया या नहीं।

यह ध्यान आते ही उसका हृदय भर आया। तुरन्त ही उसने नौकर को बुलाया और पूछा—"आज तू उनके यहाँ गया था?"

"अभी तो नहीं गया।"

"जा पूछ आ, कुछ खायेंगे?"

नौकर दौड़ता गया। लौट कर बताया—"कहते हैं, कल का ही सामान अभी रखा है, ज़रूरत होने पर बताऊँगा।"

उर्मिला ने सतोष की साँस ली। नौकर के नीचे उतर जाने पर वह फिर खिडकी पर आई। देखा, वह अगूर उठा कर खा रहा था।

क्षण भर वह खड़ी हुई देखती रही। सहसा युवक ने दृष्टि फेरी; खिड़की की ओर देखा। उर्मिला को खड़ी देख कर मुस्कराया; हाथ उठा कर नमस्ते किया। उर्मिला के भी हाथ उठ गये। थोड़ी देर तक दोनों एक दूसरे को देखते रहे। इसी समय नीचे से माँ ने बुलाया—"उर्मिला!"

उर्मिला शंकित-सी घूम पड़ी। खिड़की का दरवाजा बद कर दिया और बोली—"आ रही हूँ माँ!"

और खट-खट करती वह सीढ़ियों से उतर गई।

विमला के पिता खाना खाकर दफ़्र चले गये थे। माँ ने खाना खाने के लिये उर्मिला को बुलाया था।

खाना खा चुकने के बाद वह फिर अपने कमरे में चली आयी और एक किताब उठा कर पढ़ने लगी। परन्तु उसका जी पढने में न लग रहा था। पुस्तक के अक्षर जैसे धुँधले होते जा रहे थे और अन्त मे उस अज्ञात युवक की तस्वीर उसकी आँखों के सामने नाचने लगी। उसने पुस्तक बद करके मेज़ पर रख दी। और कमरे मे इधर-उधर टहलने लगी। थोड़ी देर बाद वह फिर आकर कुरसी पर बैठ गई। फिर पुस्तक खोली पर पढ़ने की इच्छा न हुई।

मन मे सोचने लगी—मैं व्यर्थ ही स्कूल नहीं गयी। वहाँ कम से कम

जी तो न ऊबता, पर यहाँ वह क्या करे, किसके पास बैठ कर क्षण भर अपने हृदय को शान्ति देने के लिये बातें करे। माँ के पास वह बहुत कम बैठती है। पुराने विचारों की माँ हैं। वे उर्मिला के पास स्वय ही बहुत कम बैठती हैं। और माँ से बातें करने मे उसका जी भी तो नहीं लगता।

वह उठी, बक्स खोल कर प्रमदा के पत्र निकाले। आज कई दिन से उसे न जाने क्यों प्रमदा की बड़ी याद आ रही थी। बेचारी का जीवन कितना असफल रहा! कितने ही युवक उससे प्रेम करते थे परन्तु उसने अपना प्रेम किसी को न दिया। वह उनके द्वारा अपना मनोरजन करती थी। किसी युवक के तड़पते हृदय के उद्‌गार, पत्रों मे पढने मे उसे बड़ा ही आनन्द आता था।

एक-एक पत्र निकाल कर वह पढने लगी, पर अधिक समय तक पढ़ न सकी। किशोर! कितना स्वार्थी था? प्रमदा ने उसे हृदय से चाहा, दिल भर कर प्यार किया पर किशोर के प्रेम को वह न प्राप्त कर सकी। अपराधी की भाँति वह काँप उठी। दोनों के प्रेम के बीच वही तो खाई बन कर आई थी। यदि किशोर से उसका परिचय न हुआ होता, तो वह प्रमदा को कभी हताश न करता। परन्तु उसने तो अपना प्रेम उसे प्रदान नहीं किया था, फिर यदि कोई उससे प्रेम करे तो वह उसे कैसे रोक सकती है!

हाल के आये हुये पत्र मे प्रमदा ने लिखा था—"अब जीवन से तबियत भर गई है, जी होता है आत्म-हत्या कर लूँ। जीवन में एक को प्यार किया पर उसने ही ठुकरा दिया। ठुकराता क्यों न? मैंने भी तो कितनों का ही हृदय इसी प्रकार तोड़ा है। उसकी सजा तो मुझे कुछ मिलनी ही चाहिये।"

उर्मिला ने सोचा, ठीक तो है। उसने कितनों का हृदय तोड़ा है, उसकी सजा मिलनी ही चाहिये पर—पर! वह काँप उठी। उसने भी

तो किशोर की सारी महत्वाकाक्षाओ पर पानी फेर दिया था; उसने भी तो उसके दिल मे आग लगा कर फिर बुझाने का ध्यान नहीं रखा। कितनी आशाओं से किशोर ने उससे प्यार की भीख माँगी थी पर वह न दे सकी। किशोर को उसने प्यार नहीं किया, पर क्या वह चाहती तो वह उसे प्यार कर नहीं सकती थी! पर उस समय तो प्यार के पहलू पर उसने कभी विचार भी नही किया था।

तो क्या नियति उसे भी उसकी उस भूल का दण्ड देगी? वह कुछ अधिक सोच न सकी। कुरसी से उठ कर वह पलग पर लेट गई। उसकी तबियत ठीक नहीं थी।

इसी समय माँ ने कमरे मे प्रवेश किया। दरवाजे पर से ही पूछा—"सो रही है क्या?"

"नहीं तो माँ!" उर्मिला चौंक कर उठ बैठी।

माँ ने निकट आते हुये कहा—"देखो, मैं जरा जाती हूँ उमेश बाबू के घर। मोहन को साथ लेती जाती हूँ। तू तो रहेगी न? मोहन मुझे पहुँचा कर वापस आ जायगा। फिर उसे तीन बजे के क़रीब भेज देना।"

"अच्छा," उर्मिला ने उत्तर दिया।

माँ चली गई। उर्मिला चुपचाप बिस्तर पर लेट गई। जाते-जाते माँ ने नीचे से पुकारा—"दरवाज़ा बन्द कर ले।" उर्मिला उठ कर नीचे आई। माँ के चले जाने पर क्षण भर दरवाज़े पर खड़ी सड़क पर आते-जाते लोगों को देखती रही। फिर दरवाजा बन्द कर ऊपर चली आयी।

उसे सारा घर जैसे काट-सा रहा था। इतने बड़े घर में उसे अकेले रहने का बहुत कम अवसर पड़ा था। जब कभी वह अकेली होती तो कहीं न कहीं चली जाती; किसी सखी-सहेली के यहाँ जाकर समय काट देती, पर आज उसे कहीं जाना भी तो नहीं था। जाय भी कहाँ?

खिड़की उसने खोल दी। बाहर की शीतल हवा ने कमरे में प्रवेश किया। उसे थोड़ी शान्ति प्राप्त हुई और वह फिर खिड़की पर आकर खड़ी हो गई। सामने फिर वही दृश्य था। वह चारपाई पर पड़ा था। शायद इस समय बुखार अधिक है, उसने अपने मन में सोचा।

कितनी देर तक वह खिड़की पर खड़ी रही, इसका उसे पता नहीं था। परन्तु सामने वाले मकान के युवक ने उसकी ओर न देखा। अन्त मे थक कर वह फिर आकर पलंग पर लेट गई और विचारों के प्रवाह में बहने लगी।

उसकी विचार धारा तब टूटी जब नौकर ने आवाज दी। अनमनी-सी वह उठी, दरवाजा खोला। मोहन ने मकान में प्रवेश किया। उर्मिला फिर अपने कमरे में ऊपर चली आयी। मोहन के पास कोई काम नहीं था। इसलिये वह भी नीचे बैठक में जाकर पड़ रहा था।

थोड़ी देर बाद सहसा उर्मिला को ध्यान आया। उसने मोहन को बुला कर पूछा—"तू उनके पास गया था?"

"नहीं बीवी जी, मैं तो नहीं जा सका। जाऊँ?" मोहन ने पूछा।

"हाँ, जा कर देख कैसी तबियत है।"

नौकर चला गया। थोड़ी देर बाद वापस आकर कहा—"कहते हैं, तबियत तो ठीक है पर जी जरूर ऊब रहा है। पुस्तके पढ कर मन बहला रहा था, पर उसकी भी आशा नहीं है।"

क्षण भर तक उर्मिला पड़ी सोचती रही फिर बोली—"मोहन, चल मैं भी उन्हे देख आऊँ।"

"चलें!" नौकर ने उत्तर दिया।

उर्मिला मोहन के साथ रोगी के कमरे में गयी। देखते ही उसने कहा—"आइये, बैठिये; आपको देख कर मेरा बहुत कुछ मर्ज जाता रहता है।"

उर्मिला ने मुस्कराने का प्रयत्न किया। एक कुरसी खींच कर बैठ गई और पूछा—"आपकी तबियत अब कैसी है?"

"मुझे तो ठीक ही जान पडती है, पर अब जैसा आप समझे।"

"बुख़ार कितना रहा है?"

"इसका तो मुझे पता नहीं।"

"क्यों, आपने थर्मामीटर नहीं लगाया क्या?"

"थर्मामीटर न तो मेरे पास है और न मैंने उसके लगाने की जरूरत ही कभी महसूस की।"

"अजीब आदमी हैं आप!"

युवक मुस्कराया—"आप ठीक कहती हैं। मुझे सबने सदैव विचित्र ही समझा है।"

"कुछ भी हो, पर अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान रखना तो आपका कर्त्तव्य है ही।"

"मैं तो इसकी जरूरत नहीं समझता, क्योंकि मेरे स्वास्थ्य का ध्यान रखने के लिये आप ही क्या कम हैं?"

उर्मिला मुस्करा कर रह गई। उसे युवक की बाते सुनने मे एक स्वर्गिक सुख का अनुभव हो रहा था। उसने फिर प्रश्न किया—"आपके और कोई नहीं है?"

"नहीं।"

"बिलकुल अकेले हैं?"

"हॉ बिलकुल अकेला! अपने सम्बन्ध में मैंने कभी किसी को कुछ बताया नहीं, पर आपके साथ मैं एक विचित्र प्रकार की आत्मीयता का अनुभव कर रहा हूॅ, इसलिये जी मे आता है कि अपना सारा इतिहास आपके सामने दोहरा दूॅ।"

"यदि कष्ट न हो तो कह डालें।"

"आपसे कहने मे कुछ कष्ट नहीं हो सकता।"

युवक क्षण भर के लिये रुक गया। उर्मिला की ओर उसने ध्यान से देखा। उर्मिला ने नीची आँखें किये हुये देखा, युवक की आँखें सजल हो उठी हैं।

उसने तुरन्त कहा—"मत कहिये, आपको कष्ट होता है।"

"नहीं, पर हाँ, पुरानी स्मृतियाँ हैं, इसलिये कुछ पीड़ामय अवश्य हैं, फिर भी अब बिना आपसे सब कुछ कहे मुझे चैन नहीं। आपको बताता हूँ। मेरी माता का स्वर्गवास जब हुआ तब मेरी अवस्था केवल एक वर्ष की थी। पिता एक स्कूल मे अध्यापक थे। काफी वेतन मिलता था। उन्होंने मेरा पालन-पोषण बड़े ही प्यार से किया। पर माँ की मृत्यु ने उन्हे एक प्रकार से रोगी बना दिया था और मेरे पाँच वर्ष के होते-होते उनका भी स्वर्गवास हो गया।

"मरने के पूर्व उन्होंने मुझे अपने एक साथी अध्यापक को सौंप दिया था। वे एक बड़े वैज्ञानिक थे। इलाहाबाद यूनीवर्सिटी से उन्हे डाक्टर की उपाधि मिली थी। बाद में वे वहीं रसायन-विभाग में अध्यापक भी हो गये। उनके कोई नहीं था। जीवन मे उन्होंने अकेले प्रवेश किया था और आजीवन अकेले ही रहे। विवाह उन्होंने नहीं किया था। उनका मुझ पर पिताका-सा स्नेह था। उन्होंने ही मुझे शिक्षा दी।

"मुझसे उन्हे बड़ी-बड़ी आशायें थीं। वे मुझे विलायत भेजना चाहते थे। परन्तु उनकी इच्छा पूरी न हो सकी। जिस वर्ष मैंने एम० एस-सी० की परीक्षा पास की उसी वर्ष उनका देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु के बाद मैं एक बार फिर अनाथ हो गया। मेरी देख-भाल करने वाला कोई नहीं था। उनके पास कोई सम्पत्ति नहीं थी जिसे वे मुझे दे जाते।

"मेरी इच्छा आगे पढ़ने की थी, परन्तु धनाभाव के कारण वह पूरी न हो सकी। एक वर्ष तक मैं इधर-उधर घूमता रहा। नौकरी कहीं

मिली नहीं। अन्त मे निराश होकर मैं यहाँ आया। यहाँ के विज्ञान विभाग के एक अध्यापक मेरे पोषक पिता के मित्र हैं। उन्होंने मेरी सहायता की और मुझे 'डाक्टरेट' के लिये रिसर्च करने के लिये छात्र-वृत्ति दिला दी।

"मेरा रिसर्च अब समाप्त होने पर है। इसी मार्च के महीने मे मैं अपना 'थीसिस' दूँगा। और यदि मुझे डाक्टर की उपाधि मिल गई, तो फिर कहीं नौकरी की खोज करूँगा।"

उर्मिला उसकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनती रही। उसे आश्चर्य हो रहा था कि इतना सीधा-सादा युवक कितना योग्य है। थोड़ी देर तक रुक कर युवक ने फिर कहना प्रारम्भ किया—"जीवन मे मुझे किसी नारी का स्नेह नहीं प्राप्त हुआ, न अब तक मैंने उसका अभाव ही महसूस किया था। परन्तु आपने मुझसे जो सहानुभूति दिखाई, उसने मुझे इसके लिये बाध्य कर दिया कि अपने अभाव पर एक बार दृष्टिपात करूँ। माँ का स्नेह मुझे कभी मिला ही नहीं और किसी स्त्री ने अपना प्रेम किसी भी रूप में मुझे प्रदान नहीं किया। पर आपने मुझ पर जो कृपा की है, उसने मेरे जीवन में एक नई गति पैदा कर दी है। लगता है, आपके पास बैठा हुआ आपको देखता रहूँ।"

उर्मिला लजा गई।

युवक फिर बोला—"आप क्षमा करें, यदि मेरे मुँह से कुछ ऐसे शब्द निकल जायँ जो आपके सम्मान के विरुद्ध हो, कारण कि मुझे समाज के बीच व्यवहार करने का तरीका ज्ञात नहीं है। मैं सदा ही समाज से दूर रहा हूँ। स्त्रियों से खास तौर पर मुझे सदैव ही अलग रखा गया है, इस कारण मुझे समाज के तौर-तरीके बिल्कुल ही नहीं ज्ञात हैं।"

"नहीं, मैं बुरा नहीं मान रही हूँ।" उर्मिला ने धीरे से कहा।

"धन्यवाद, आप से मुझे ऐसी ही आशा थी।"

उर्मिला चुप रही। युवक ने फिर कहा—"पर अभी तक मैं अपनी हितैषिणी का नाम नहीं जान सका हूँ।"

"उर्मिला," धीरे से उसने उत्तर दिया।

"धन्यवाद, तो आप कहीं पढ़ती हैं।"

"नहीं, मैं यहाँ एक स्कूल मे अध्यापिका हूँ।"

"अच्छा! अभी हाल मे हुई हैं, मालूम होता है।"

"जी हाँ, पिछले साल मैंने प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० किया है।"

"अभी आपकी अवस्था बहुत कम मालूम होती है। मैंने सोचा था, आप अभी पढती ही होंगी।" युवक मुस्करा उठा, पर उसकी मुस्कराहट से उसके अन्तर की पीड़ा झाँक रही थी।

उर्मिला ने अनुमान किया, उसे कष्ट हो रहा है। बोली—"आप शात पडे रहे। आपको बाते करने में कष्ट होता है।"

"जी नहीं, मुझे आपसे बाते करने में ही आराम मिलता है। कष्ट की कोई बात नहीं है। हाँ, आज सिर मे सुबह से बडा दर्द रहा है। कई बार उसे भुलाने के लिये मैंने प्रयत्न किया। पढ़ने के लिये पुस्तक भी उठाई, पर आपकी आज्ञा के कारण पढ न सका।"

"ऐसी हालत में पढना ठीक न होगा।"

"यह तो मैं भी समझता हूँ, पर जी ऊबता है तब क्या करूँ? यहाँ और कोई बात करने वाला भी तो नहीं है।"

"मैं आ जाया करूँगा।"

"नहीं, आप कहाँ तक कष्ट करेंगी। यही क्या कम है।"

"नहीं, आपके लिये कुछ करने मे मुझे कष्ट नहीं होता, वरन् सुख ही मिलता है।"

कहने को तो उर्मिला ने कह दिया, पर पीछे उसे लज्जा-सी लगी। उसने अपने मन में क्या सोचा होगा? विचित्र लड़की है।

किन्तु युवक ने इस पर ध्यान शायद नहीं दिया; पूछा—"आज आपके स्कूल में छुट्टी है क्या ?"

"नहीं, आज मैं गयी नहीं।"

"क्यों ?"

"यों ही, जी में आ गया।"

युवक कुछ देर तक सोचता रहा, फिर कुछ कहना चाहता था, पर रुक गया।

उर्मिला युवक के मुख को ध्यानपूर्वक देख रही थी। सहसा उसे ध्यान आया—उसका सिर दर्द कर रहा है। वह क्या करे ? मोहन आकर फिर न जाने कहाँ चला गया था। वह उठी, खिड़की के निकट ही एक छोटी आलमारी पर से शीशी उठाई और तेल लगाने के लिये जैसे ही चली थी कि युवक ने पूछा—"आप क्या करने जा रही हैं ?"

"आपका सिर दर्द करता है ?"

"हाँ, तो क्या आप तेल लगायँगी ?"

"क्या हर्ज है ?"

"आपके लिये नहीं, पर मेरे लिये है।"

उर्मिला रुक गई। ठीक ही तो वह कहता है। यदि कोई यह जान जाय कि मैं युवक के लिये क्या कर रही हूँ, तो वह क्या समझेगा ? उसने शीशी फिर उसी तरह रख दी और आकर कुरसी पर बैठ गई। युवक निस्वार्थ प्रेम की इस मूर्त्ति को देख रहा था।

युवक के दवा पीने का समय हो गया था। घड़ी की ओर उसने देखा और फिर उठना चाहा। उर्मिला ने पूछा—"क्यों उठ रहे हैं, पड़े रहें।"

"तनिक दवा पी लूँ।"

उर्मिला तुरन्त उठी। दवा की शीशी लेकर उसने शीशे के गिलास मे एक खुराक दवा उँड़ेली और युवक को पिलाने के लिये झुकी।

युवक की गर्म गर्म साँसे आकर उसके गाल पर बिखरने लगीं। सारे शरीर में जैसे बिजली-सी दौड़ गई। वह काँप उठी, धीरे से युवक के खुले हुये मुँह में उसने दवा डाल दी। फिर पानी का एक घूँट मुँह मे डाल दिया।

युवक ने दवा पीकर उर्मिला की ओर एक करुण दृष्टि से देखा, फिर कहा—"आप मुझे दवा देकर जिला रही हैं।"

उर्मिला ने सिर नीचा कर लिया।

"आपके इस ऋण से मैं जीवन भर उऋण न हो सकूँगा।"

"आप इसे ऋण न समझे।" कहते-कहते उर्मिला की आँखे छलछला आईं।

युवक ने एक निःश्वास खींच कर कहा—"ऋण न समझूँ, उर्मिला!—ऋण! तुम्हारे उपकारों को मैं ऋण न समझूँगा; किन्तु तुम्हारी इस कृपा का बदला मैं अपना जीवन देकर भी तो पूरा नहीं कर सकता।"

"पर हर चीज़ का तो बदला दिया नहीं जा सकता!"

"हाँ, सच कहती हो। इसीलिये यह इच्छा होती है कि तुम्हे अपना जीवन दे दूँ।"

उर्मिला लज्जित हो गई। उसके गोरे-गोरे गालो पर जैसे किसी ने अंगूरी शराब ढुलका दी हो। उसने आँखे नीची कर लीं।

युवक आवेश में कहता गया—"उर्मिला, जी में आता है अपने जीवन को तुम्हारे चरणों पर बिखरा दूँ। बोलो रानी, तुम मेरी इस तुच्छ भेट को स्वीकार करोगी?"

उर्मिला को ऐसा लग रहा था कि युवक इसी प्रकार बात करता रहे। उसके हृदय मे एक विचित्र प्रकार की अनुभूति हो रही थी। वह चाहती थी कि वह युवक के वक्षःस्थल पर अपना मुख रख कर कह दे—"मैं तो पहले से ही अपने को तुम्हे सौप चुकी हूँ।"

पर वह कह नही सकी। उसकी वाणी मूक बनी रही। युवक चारपाई पर उठ कर बैठ गया था। हाथ बढ़ा कर उसने उर्मिला का हाथ अपने हाथ मे ले लिया, बोला—"बोलो उर्मिला, जानता हूँ कि तुम्हारे योग्य मैं नहीं हूँ। तुम्हे देने के लिये मेरे पास सिवा हृदय के प्रेम के और कुछ नहीं है और प्रेम तो तुम जिसकी होगी, वही करेगा। फिर भी क्या मैं आशा करूँ कि तुम मुझे प्रेम कर सकोगी, मेरी रानी?"

उर्मिला ने हौले हौले कहा—"आप जाने क्या कह रहे हैं!"

युवक भावना-जगत् में बढ़ता ही जा रहा था; उसे ऐसा जान पड रहा था मानो वह इस ससार मे नहीं है। उर्मिला के हाथ को अपनी हथेलियों के बीच दबाते हुये बोला—"रानी, एक बार तुम कह दो कि तुम मुझसे प्रेम करती हो।"

पर उर्मिला की आवाज़ जैसे बन्द हो गई हो। उसका शरीर निश्चेष्ट-सा होता जा रहा था और फिर उसे ऐसा जान पड़ा, मानो वह गिरना चाहती है। युवक ने उसे अपनी बाँहों में सँभाल लिया। बड़ी देर तक वह युवक की बाँहों मे सुरक्षित-सी पड़ी रही। युवक उसकी बन्द आँखों को देखता रहा। इन दो पलकों के बीच कितनी सुन्दर आँखे छिपी हुई हैं! उसके अधर हिल रहे थे। युवक ने झुक कर उसके अधर चूम लिये। उर्मिला ने आँखे खोलीं; युवक की मद-भरी आँखों को वह क्षण भर देखती रही। उसके बाद सहसा उसे जैसे कुछ ध्यान आया। वह वेग से उठी और नीचे भाग गई।

उस दिन से उर्मिला ने फिर युवक की चर्चा नहीं की। मोहन नित्य जाता, दवा इत्यादि का प्रबन्ध कर आता, पानी भी गरम करके दे आता। पर उर्मिला का उससे कुछ पूछने का साहस न होता। कभी-कभी खिडकी पर खडी होकर वह उसे देखा अवश्य करती थी। उसके जी मे आता कि वह फिर युवक के बाहुपाशों में उसी प्रकार बँध जाय पर साहस न होता था।

कई दिन बाद मोहन ने एक चिट्ठी लाकर उर्मिला के हाथों पर रख दी। "किसने दी है रे ?" उर्मिला ने पूछा।

"रवि बाबू ने।"

"कौन रवि बाबू ?"

"यही सामने के मकान वाले।"

काँपते हुये हाथों से उसने चिट्ठी खोली, पढ़ा। उसने लिखा था—"मेरी रानी !

तुम्हे यह सम्बोधन रुचिकर होगा या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता; पर मेरा एक-एक कण तुम्हे अपनी रानी मान चुका है और इसलिये मैं तुम्हे और किसी प्रकार से सम्बोधन कर ही नहीं सकता। रानी, आज पाँच दिन से अधिक हो गये तुम्हे देखे हुये। तुम्हे कैसे बताऊँ कि मुझ पर क्या बीत रही है ! यदि तुम्हे यही करना है, तो तुम मुझे अच्छा क्यों करती हो ? क्यों नहीं मुझे इसी मर्ज मे मर जाने देती ? एक सुखमय स्मृति लेकर मरना, दुखमय जीवन से कहीं ज्यादा अच्छा है।

उस दिन की घटना का तुम पर क्या प्रभाव पड़ा, यह मैं न जान सका। तुम आयी भी नहीं, पता नहीं क्यो ? क्या तुम नाराज हो गई ?

सुनता हूँ, प्रेम की आग एक ओर नहीं लगती, बल्कि दोनों ही ओर लगती है। पर मैं यह कैसे मान लूँ ? कैसे मान लूँ कि तुम्हारे हृदय मे भी वही आग है जिसमें मैं जल रहा हूँ। सच कहता हूँ रानी, तुम्हारे प्रेम की पीड़ा कितनी घातक है, कितनी दुःखदायी है। चारों ओर दर्द ही दर्द दिखायी देता है।

रानी, तुम्हे देखे बिना मेरा जीवन व्यर्थ हो रहा है। केवल कभी-कभी दर्शन दे दिया करो !

क्या पत्र के उत्तर की आशा करूँ ?

तुम्हारा—रवि"

उर्मिला ने पत्र को कई बार पढा। कमरा बन्द कर वह उत्तर लिखने बैठ गई। कई बार पत्र का उत्तर लिखा, पर फाड़ कर फेंक दिया। जो वह चाहती थी, जाने क्यों वह भाव पत्रों से प्रकट न हो रहा था। बाध्य होकर उसने पत्र का उत्तर देने का निश्चय त्याग दिया। पर रवि कहता है दर्शन देने के लिये। कैसे उससे मिलूँ, उर्मिला सोच रही थी। उसके घर वह जाना नहीं चाहती थी और कोई रास्ता था नहीं। रात भर उसे नींद न आई! प्रातःकाल उठी, नहा-धोकर जब वह कमरे मे आई, तब बक्स खोल कर अपनी सब से अच्छी साड़ी निकाल कर पहिनी; पूरा शृंगार करके वह खिडकी पर खड़ी हो गई, पर रवि आँखें बन्द किये चारपाई पर पड़ा था। उर्मिला बडी देर तक खडी रही। फिर उसने कागज की एक गोली बनाई और उठा कर खिड़की की राह फेंकी। गोली रवि की खिडकी की छड से टकरा कर नीचे सडक पर जाते हुए एक आदमी के ऊपर गिरी। उसने सिर उठा कर ऊपर की ओर देखा, कुछ भुनभुनाया और फिर आगे चला गया। दुबारा गोली फेंकने का उसका साहस न हो रहा था, किन्तु उसने फिर एक गोली गनाई। सड़क के आने-जाने वालो को देख कर उसने गोली फेंक दी।

इस बार गोली जाकर रवि के वक्षःस्थल पर गिरी। वह चौंका। छाती पर से कागज़ की गोली उठा ली। खोल कर देखा, सादा कागज था। सिर उठा कर उसने उर्मिला की खिड़की की ओर देखा। मुस्कराती हुई उर्मिला आड़ में हो गई। क्षण भर बाद वह फिर आकर सामने खड़ी हो गई। इस बार वह अधिक गम्भीर थी। रवि ने उसकी ओर देख कर नमस्कार किया। उसने नमस्कार का उत्तर दिया। रवि ने धीरे से कहा—"ऐसे ही दर्शन दे दिया करो!"

मुस्करा कर उर्मिला चली गई, किन्तु उस दिन से वह अपना अधिक समय खिड़की पर ही काटने लगी। रवि अच्छा हो गया।

धीरे-धीरे रवि का परिचय उर्मिला के पिता से हो गया। उर्मिला के पिता सीधे स्वाभाव के व्यक्ति थे। प्रातः अखबार पढना उनका व्यसन था। सुहब होते ही नित्य कर्म से अवकाश पाकर वे बाहर बैठक में आ जाते। मोहन चाय वहीं रख जाता और वे चुपचाप बैठे, प्याले पर प्याले चाय पीते और सिगरेट फूंकते। नौ बजते-बजते वे समाचार-पत्र की एक-एक पक्ति पढ़ जाते और फिर भोजन करने दफ़्तर चले जाते।

उनका स्वाभाव था कि शाम को वे बाहर चबूतरे पर कुरसी डाल कर बैठ जाते। यदि कोई परिचित आ जाता, तो किसी न किसी विषय को लेकर बहस चलती रहती और यदि कोई न आता, तो सिगरेट ही फुंकती रहती।

उस दिन संध्या समय उर्मिला के पिता बाहर बैठे हुए थे। उसी समय आ गया रवि। साथ में पडोस के एक बाबू साहब भी थे। वे रवि को भली प्रकार जानते थे। उन्होने पूछा—"रवि बाबू, आपका थीसिस तैयार हो गया!"

"जी हाँ।"

"तो कब तक डाक्टर होने की आशा है?"

"शीघ्र ही, यदि आप लोगों की कृपा हुई तो।" रवि ने मुस्करा कर उत्तर दिया।

"अरे वाह, हम लोग तो चाहते ही हैं कि आप शीघ्र ही डाक्टर हो जायँ! और इसी यूनीवर्सिटी में प्रोफेसर हों।"

इधर-उधर की अनेक बातें करने के बाद वे चले गये। रवि ने ऊपर जाने के लिये सीढ़ी पर पैर रखा ही था कि किसी ने पुकारा—"ज़रा सुनियेगा तो, महाशय जी।"

रवि ने घूम कर देखा—उर्मिला के पिता उसे बुला रहे थे। रवि के मुँह फेरते हुए ही बोले—"जरा इस गरीब के पास भी आइयेगा डाक्टर साहब!"

रवि आकर बैठ गया; बोला—"क्या, साहब, आप भी इतने बडे होकर मुझसे ऐसी बाते कर रहे हैं? अरे मैं तो आप लोगों का सेवक हूँ।"

"हॉ, हॉ, आप बडे सुशील प्रतीत होते है।" उर्मिला के पिता ने कहा। फिर क्षण भर रुक कर बोले—"आप हमारे पड़ोस मे रहते हैं और हम आप से परिचित नही!"

"जी हॉ, यह मेरा दुर्भाग्य है।"

"नहीं, नही, मेरा ही दुर्भाग्य समझिये, क्योंकि मैंने कई बार सोचा कि आपसे परिचय हो जाता, पर आपसे कभी भेंट ही न होती थी।"

"जी हॉ, उधर मैं बहुत व्यस्त था।"

"हॉ, तो अब तो अवकाश मिल गया होगा?"

"जी हॉ, अब तो खाली हो गया हूँ। थीसिस दाखिल हो गया है।"

"किस विषय पर रिसर्च किया आपने?"

"विज्ञान मे है।" रवि ने उत्तर दिया।

उर्मिला के पिता ने सिगरेट का डिब्बा उठाया, एक सिगरेट निकाल कर स्वयं ली और फिर डिब्बा रवि की ओर बढ़ाते हुए कहा—"लीजिये, शौक कीजिये!"

"जी, मैं तो नहीं पीता!"

"नहीं पीते आप!" उर्मिला के पिता ने आश्चर्य के साथ पूछा।

"जी, मैंने आज तक नहीं पी।"

"आश्चर्य है! तब तो आपको साधु-महात्मा होना चाहिये था।"

उर्मिला के पिता पश्चिमी सभ्यता के रीति-रिवाजो के पूरे भक्त थे। कोई व्यक्ति सिगरेट नहीं पीता, यह तो वे समझ ही न सकते थे। रवि के

डाक्टर होने की बात सुन कर वे प्रसन्न हुए थे और इसीलिये परिचय करने के उद्देश्य से उसे बुलाया भी था। पर वह सिगरेट नहीं पीता, यह सुन कर उन्हे बड़ी निराशा हुई।

उन्हे आज भी याद है : जब वे युवक थे तब एक बार उन्हे एक बडे ही धनी तथा सभ्य समाज में निमन्त्रण में जाने का अवसर प्राप्त हुआ। उस समय वे सिगरेट न पीते थे। उस पार्टी में उन्हे भी सिगरेट दी गई, पर उन्होंने इकार कर दिया। इससे उन्हे वहाँ अत्यन्त लज्जित होना पड़ा था और तब से ही वे सिगरेट के अनन्य-भक्त हो गये थे।

थोड़ी देर तक इधर-उधर की बाते होने के पश्चात् रवि ने आज्ञा चाही। उर्मिला के पिता ने उससे और देर तक बैठने का आग्रह नहीं किया और वह चला गया।

उस दिन सारी रात रवि अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में विचार करता रहा। कई दिनों से वह उर्मिला के पिता से परिचय प्राप्त करने की बात सोच रहा था, पर अवसर ही नहीं मिलता था। सौभाग्यवश आज उसका परिचय अपने आप ही हो गया। वह सोचता, किसी समय अवसर पाकर वह उर्मिला के पिता से उर्मिला के विवाह के सम्बन्ध में बातचीत करेगा। उसे अपने निराश जीवन मे एक प्रकार की सुनहली आशा-सी दिखाई देने लगी।

धीरे-धीरे रवि का उर्मिला के कुटुम्ब से बहुत अधिक परिचय हो गया। घर के एक व्यक्ति की भाँति ही वह हो गया। घटों आकर वह उर्मिला के पास बैठा रहता; उसके आते ही उर्मिला की माँ प्रसन्न हो उठतीं। वे रवि को अपने लड़के की ही भाँति प्रेम करने लगी थीं। वह भी माँ के पास बैठ कर घटों काट देता।

एक दिन रवि शाम को उर्मिला की माँ के पास आकर बैठा था। उर्मिला अपने कमरे मे थी। रवि आया है, यह जानते ही वह भी नीचे

उतर आयी और बैठ गई। माँ ने पूछा—"आज सुबह नहीं दिखाई पड़ा। कहाँ गया था ?"

"कहीं तो नहीं माँ, घर में ही था। खाना बना कर तब कहीं निकला हूँ।"

"अरे भाई, तो तू कोई बहू क्यों नहीं लाता, जिससे तेरा खाना बनाना छूटे ?"

मुस्करा कर रवि ने उर्मिला की ओर देखा, उसने लजा कर सिर नीचा कर लिया; फिर बोली—"और माँ यदि इनकी बहू खाना न बनाये तो ?"

"चल, चल, खाना न बनायेगी, तो क्या इसे पढ़ाने आवेगी ?"

रवि और उर्मिला खूब हँसे। और जब माँ चली गयी, तब रवि ने उर्मिला से पूछा—"क्यों ऊर्मि, माँ बात तो ठीक कहती हैं ? अब मुझे तुम्हारी सख्त ज़रूरत है।"

"तो तुम खाना मेरे यहाँ खा लिया करो।"

"नहीं या तो तुम रोज मेरे यहाँ आकर खाना बना जाया करो या फिर तुम बहू बन कर मेरे घर मे प्रवेश करो।"

"और जो दोनों न करूँ ?" उर्मिला ने हँस कर कहा।

"करोगी कैसे नहीं। मैं तुमसे जबर्दस्ती कराऊँगा।"

जलपान की सामग्री लेकर माँ आ गई। रवि ने जलपान किया और फिर बडी देर तक माँ से बातें करता बैठा रहा। इधर रवि के पास कोई काम नहीं है। वह अपने थीसिस के परिणाम की प्रतीक्षा कर रहा है। इसलिये उसका अधिकाश समय उर्मिला के यहाँ ही व्यतीत होता है।

रवि मे बातचीत करके किसी को अपना बना लेने की एक कला है, इसीलिये तो उर्मिला उसे बहुधा 'जादूगर' कह कर पुकारा करती है। सचमुच उसकी बातों में जादू भरा होता है। एक बार भी उससे

जो बात कर लेता है, वही उसका मित्र बन जाता है और फिर जन्म भर उसका मित्र बना रहता है।

रवि को डाक्टर की उपाधि मिल गई। यूनीवर्सिटी के विद्यार्थियों ने उसका बड़ा सम्मान किया। उसके सम्मान मे विद्यार्थियों ने पार्टी दी थी। वहाँ उसने अपनी खोज के सम्बन्ध में भाषण दिया, जिसे विद्यार्थियों ने बहुत पसन्द किया। जिस समय वह पार्टी से घर वापस आ रहा था, उर्मिला की माँ दरवाजे पर खड़ी थीं। रवि को देखते ही भीतर बुला लिया। कुरसी पर बैठाते हुये पूछा—"कहाँ गया था रवि?"

"आज एक पार्टी थी माँ, वहीं गया था।"

उर्मिला ने माँ को सब समझाया, तब माँ बोली—"अरे तो अब मेरा रवि बड़ा आदमी हो गया है। पर तेरा यह खद्दर का कुर्ता कब छूटेगा?"

"खद्दर का कुर्ता तो कभी नहीं छूट सकता।"

"नहीं, यह तुम्हे अब छोड़ना ही पडेगा।" माँ ने अनुरोध-पूर्वक कहा।

रवि ने कोई उत्तर न दिया।

जीवन में कभी-कभी अज्ञात घटनाये भी घट जाया करती हैं। उर्मिला रवि के प्रेम मे इतनी मग्न हो गई थी कि उसे यह ध्यान ही न रह गया था कि कभी वियोग भी हो सकता है। रवि के डाक्टर होते देर न हुई कि लखनऊ विश्वविद्यालय मे उसे विज्ञान के लेक्चरर का स्थान मिल गया। पहली तारीख से ही उसे अपने पद का कार्य भार सँभालना था।

नियुक्ति का समाचार मिलते ही रवि दौड़ा हुआ उर्मिला के पास पहुँचा और बोला—"ऊर्मि, ऊर्मि, मेरी नियुक्ति हो गई।"

"कहाँ?" उर्मिला ने प्रसन्न होकर पूछा।

"लखनऊ विश्वविद्यालय में।"

"लखनऊ!" उर्मिला ने गिरे हुये मन से कहा।

रवि उर्मिला की पीडा को समझ गया। अपने निकट ही एक कुरसी पर उर्मिला को बिठाते हुये बोला—"उर्मि, इससे दुःखी होने की क्या बात है? अब तो तुम्हे प्रसन्न होना चाहिये कि जिस दिन की प्रतीक्षा में मैं था, वह अब आ गया है। अब मैं यहाँ से जाते ही पिता जी को पत्र लिख कर सारी स्थिति समझा दूँगा। तुम भी माँ से कहना। सब ठीक हो जायगा। फिर हम तुम एक हो जायँगे।"

"तो कब जाओगे तुम?" उर्मिला ने प्रश्न किया।

"तीस तारीख को।"

"ओह, तब दिन ही कितने रह गये हैं!" उर्मिला ने एक निःश्वास खींच कर कहा।

रवि ने उसे समझा बुझा कर शात किया।

जिस दिन रवि जा रहा था, वह सारा दिन उर्मिला को रोते बीता। माँ ने समझाया—रवि आता जाता रहेगा; पर उसके आँसू न थमते। उर्मिला अपने पिता-माता के साथ रवि को पहुँचाने के लिये स्टेशन पर गयी। माता-पिता के साथ होने के कारण रवि से वह एकान्त में बातें न कर सकी। पर दोनों ने आँखों ही आँखों में एक दूसरे को बहुत कुछ समझा-बुझा दिया।

रवि के चले जाने पर उर्मिला उदास रहने लगी। उसका जी किसी काम में न लगता। स्कूल से भी उसने छुट्टी ले ली। धीरे-धीरे कर के दिन बीतने लगे। नित्य ही वह रवि के पत्र की प्रतीक्षा करती। जब आठ दिनो तक पत्र न मिला, तो उसे बड़ी चिन्ता हुई। रवि ने जाते-जाते कहा था कि वहाँ पहुँच कर सब ठीक होते ही मैं पत्र लिखूँगा। पर अभी तक नहीं आया। तो क्या रवि उसे भूल गया? उर्मिला के हृदय में सन्देह का अकुर उभरता दिखाई दिया,

परन्तु उसको उसने वहीं कुचल दिया। यह कदापि नहीं हो सकता। रवि उसको हृदय से प्रेम करता है। उसे वह कभी भूल नहीं सकता। कोई कारण हो गया होगा जिससे उसने पत्र न लिखा होगा।

अन्त में उसने निश्चय किया—वह स्वयं ही उसे पत्र लिखेगी। किन्तु अभी उसके रहने का भी तो ठीक नहीं है, किस पते पर वह पत्र लिखे। क्षण भर तक उर्मिला सोचती बैठी रही। चित्र निकाल कर देखा। वही हँसता हुआ स्नेहपूर्ण चेहरा! धीरे से चित्र के कान के पास मुँह ले जाकर उसने कहा—"तुम कितने निष्ठुर हो!"

वह क्षण भर तक चित्र की उन मदभरी आँखों को देखती रही। फिर सहसा जैसे चौंक कर बोली—"नहीं-नहीं, तुम निष्ठुर कदापि नहीं हो सकते। तुम्हारा हृदय कठोर नहीं हो सकता। फिर मेरे प्रियतम तुम ने अभी तक पत्र क्यों नहीं भेजा?"

उसे याद आई, वह घर का पता नहीं जानती तो क्या हुआ, लखनऊ विश्वविद्यालय के विज्ञान-विभाग के पते से तो वह पत्र भेज ही सकती है। उसकी सम्पूर्ण परेशानी जैसे दूर हो गई। उसने तुरन्त ही लेटर पेपर और कलम निकाली। पर क्या इस लेटर पेपर पर रवि को पत्र लिखना ठीक होगा। उसे वह लेटर पेपर पसन्द न आया। उसने दूसरा पैड निकाला, तीसरा निकाला। अन्त में एक को बड़ी कठिनाई से पसंद किया। कमरे का द्वार भीतर से बन्द करके वह पत्र लिखने बैठ गई। एक-एक पक्ति उसने एक-एक पहर सोच-सोच कर लिखी। बड़ी कठिनाई से रात में एक बजे पत्र समाप्त किया और तब फिर उस पर पता लिख कर टिकट लगा कर रख दिया। सुबह होते ही वह पत्र को नौकर द्वारा लेटर बाक्स में डलवा देगी।

बड़ी देर बाद उसे नींद आई। रात को उसने सपने में देखा—मानो एक सुन्दर-से छोटे से बंगले में वह रवि के साथ टहल रही है। बगले के सामने एक सुन्दर घास का मैदान है—जिसके चारों ओर

गुलाब के लाल-लाल फूल लगे हैं। रवि ने उसके हाथ को अपने हाथ मे लेते हुए कहा—"रानी, देखो ये फूल कितने लाल हैं! तुम्हारे इस सुन्दर मुखड़े की होड़ करने के लिये, इन्होंने अपने शरीर का सारा रक्त अपने मुख पर ही बिखेर लिया है। फिर भी क्या ये उतने सुन्दर कभी हो सकते हैं?"

उसने हाथ खींच कर मुस्कराते हुए कहा—"विज्ञान में यश प्राप्त करके अब मालूम होता है, तुम कविता के क्षेत्र मे भी यश प्राप्त करोगे।"

"क्यों?" रवि ने मुस्कराते हुए प्रश्न किया।

"क्योंकि अब तुम कविता भी करने लगे हो।"

रवि जी खोल कर हँसा। फिर मदभरी आँखों को उर्मिला की आँखो मे डाल कर उसे पकड़ना चाहा, पर उर्मिला उसका आशय समझ गई। भाग कर वह 'लॉन' के बीच मे पहुँच गई। रवि ने भी उसका पीछा किया, पर वह उसे इधर से उधर दौडाने लगी। अन्त मे रवि ने दौड़ कर उसे पकड ही लिया। रवि उसे अपने बाहुपाश में बाँध कर उसके फड़कते हुए उन पतले अधरों पर चुम्बन का एक चिन्ह अंकित करने के लिये जैसे ही झुका था कि उर्मिला की नींद खुल गई। देखा, बाहर सूर्य की सुनहली किरणें खेलने लग गई थीं। वह उठ बैठी। कितना सुखद स्वप्न था। काश! ऐसा ही स्वप्न देखते हुए उसका जीवन व्यतीत हो जाता।...उसने तुरन्त ही नौकर को बुलाया। उसे पत्र देते हुए कहा—"इसे अभी जाकर लेटर बॉक्स मे डाल आओ।"

नौकर पत्र लेकर चला गया। उर्मिला उठी। उसका चित्त आज प्रसन्न था। अपने प्रियतम को उसने देखा था, चाहे स्वप्न मे ही क्यों न देखा हो।

स्नानादि के पश्चात् वह कमरे में आकर बैठी ही थी कि बाहर पोस्टमैन ने आवज़ दी—"चिट्ठी है बाबू जी।"

उर्मिला नित्य पोस्टमैन के आने की प्रतीक्षा करती थी। उसकी आवाज सुनते ही, वह नीचे दौड़ी आयी और चिट्ठी ले ली। कई चिट्ठियाँ पिता के नाम की थीं। एक उसके नाम की भी थी। उर्मिला ने लिफाफे पर लिखे गये पते को कई बार पढ़ा। लिखावट पहिचानी। रवि के अतिरिक्त और किसी की लिखावट यह हो ही नहीं सकती! उर्मिला का हृदय खुशी से उछलने लगा। शेष पत्रों को मोहन को पकड़ा कर ऊपर भाग आयी। कमरा बन्द कर लिया और एकान्त में बैठ कर पत्र पढने लगी। एक बार पढा, दो बार पढ़ा; पर उसे सन्तोष न हुआ। वह चाहती थी, सदैव वह उस पत्र को पढ़ती ही रहे। रवि ने लिखा था —'बिना उसके उसे वहाँ एक क्षण भी अच्छा नहीं लगता। वह चाहता है कि नौकरी छोड़ कर बनारस आ जाये और अपने उसी पुराने कमरे में रहे, अपनी प्राणों से प्यारी उर्मिला को देखे।' उर्मिला पत्र पढ कर सब कुछ भूल गई।

एक बार उसकी दृष्टि फिर सामने वाले मकान की खिड़की पर पड़ी। उसकी आँखों में आँसू भर आये। इसी खिड़की से उसकी स्मृतियाँ लिपटी हुई हैं। मनुष्य जिससे प्रेम करता है उसके वियोग मे उससे सम्बन्ध मे रखने वाली प्रत्येक चीज़ अत्यन्त दुःखदायी हो जाती है।

जब से रवि यहाँ से चला गया है, तभी से यह खिड़की बंद रहती है। कोई इसे खोलने वाला नही है। पर उर्मिला को ऐसा जान पड़ता है, जैसे रवि अब भी खिड़की पर बैठा हुआ डाक्टरेट का थीसिस तैयार कर रहा है। उर्मिला क्षण भर तक खिड़की को एकटक देखती रही, फिर कमरे मे टहलने लगी। रवि का पत्र उसी प्रकार खुला हुआ मेज पर पड़ा था। उसने उसे उठा कर, तह करके, फिर लिफाफे मे रख दिया और बक्स खोल कर रेशमी रूमाल मे बँधा हुआ एक बडल निकाला और खोल कर लिफाफे को उसी मे रख दिया। रूमाल मे

रवि के अनेक पत्र रखे हुये थे। बंडल बना कर उसने एक बार उसे चूमा, फिर हृदय से लगा लिया। उसकी आँखों से झरझर करके आँसू बहने लगे।

बड़ी ही सावधानी से उसने उस बडल को फिर सन्दूक मे रख दिया और सन्दूक बन्द करके चारपाई पर लेट गई। उसका हृदय वियोग की वेदना से भर गया था। सारा ससार उसे शून्य-सा दिखाई पड़ रहा था।

दिन बीतते गये। रवि के पत्र बराबर आते रहे। दशहरे की छुट्टियों मे वह स्वयं भी बनारस आया। पहले तो वह एक होटल मे टिका, पर बाद मे जब उर्मिला के पिता को इसका पता लगा, तो वे बहुत ही बिगड़े; जाकर स्वयं ही रवि का सामान उठवा लाये। फिर आठ-दस दिन तक वह उन्हीं के घर मे रहा।

कई बार रवि के जी में आया कि वह उर्मिला के पिता से उर्मिला के साथ विवाह का प्रस्ताव करे, पर उसका साहस न होता था। एक दिन उर्मिला के पिता ने उससे कहा भी—"रवि, तुम उर्मिला के योग्य कोई लड़का लखनऊ मे खोजो।"

रवि ने सिर झुका कर 'अच्छा' कह दिया। पर उस दिन से वह अधिक चिन्तित हो गया।

उसी दिन शाम को वह काशी विश्वविद्यालय के विज्ञान-विभाग के अध्यक्ष, प्रोफेसर पाठक के पास गया। प्रोफेसर पाठक रवि को बहुत मानते थे। उन्होंने ही उसे काशी विश्वविद्यालय में 'डाक्टरेट' के लिये रिसर्च करने के लिये छात्र-वृत्ति दिला दी थी। अपने लड़के की ही भाँति वे उसे मानते थे। रवि ने जाकर उनसे सारी परिस्थिति बताई और यह भी कहा कि यदि उर्मिला से उसका विवाह न हो सका, तो उसका जीवन दुःखमय हो जायगा।

प्रोफेसर पाठक बड़े ही सहृदय व्यक्ति थे। उन्होंने मुस्करा कर रवि

से कहा—"अच्छा रवि, तुम्हारा विवाह तो मैं ठीक करा दूँगा, पर बताओ तुम मुझे क्या दोगे ?"

"आपका तो मैं ही हूँ प्रोफेसर साहब !"

"हाँ, तुम तो हो ही।" प्रोफेसर पाठक ने मुस्करा कर कहा।

दूसरे दिन शाम को प्रोफेसर पाठक उर्मिला के घर पर आये। रवि कहीं चल गया था। उर्मिला के पिता बाहर बैठे हुये सिगरेट पी रहे थे। प्रोफेसर पाठक आकर निकट ही पड़ी कुरसी पर बैठ गये। अपना परिचय देने के पश्चात् उन्होंने कहना प्रारम्भ किया—

"रवि को मैं लड़के की भाँति मानता हूँ और उससे मुझे यह मालूम हुआ है कि आपके परिवार से भी उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिये रवि के भावी जीवन के सम्बन्ध मे, मैं आपसे कुछ बातें करने आया हूँ।"

उर्मिला के पिता कुतूहल के साथ बोले—"कहिये—रवि के लिये यदि मैं कुछ कर सका, तो इसे अपना भाग्य समझूँगा।"

यह कह कर उन्होंने सिगरेट का डिब्बा उठा लिया और दियासलाई के साथ उसे प्रोफेसर पाठक की ओर बढ़ाया। प्रोफेसर पाठक ने एक सिगरेट निकाल कर सुलगाते हुये कहा—"आप जानते हैं कि अब रवि नौकर हो गया है। इसलिये मैं यह समझता हूँ कि अब उसके विवाह का शीघ्र ही प्रबन्ध किया जाना चाहिये।"

"विवाह का प्रबन्ध ! रवि के ?—यह तो बडी ही अच्छी बात है। मैं तो उन्हे पहले से ही विवाह के लिये कहता रहा, पर वे सदा यही कहते रहे कि नौकर हो जाऊँ तब विवाह करूँगा।"

"हाँ और अब वह नौकर भी हो गया।"

"जी हाँ, तो आपने कहीं कोई लड़की ठीक की ?"

"जी हाँ, मैंने लड़की ठीक कर ली है।"

"अच्छा !"

"हाँ, और उसे रवि ने भी देखा है।"

"तब तो और अच्छी बात है।"

"और दोनों एक दूसरे को पसन्द भी करते हैं।"

"मैं आपस की पसन्द की शादी को सदैव पसन्द करता हूँ।"

"यह तो ठीक ही है, आपसे मुझे ऐसी ही आशा थी।"

क्षण भर रुक कर उर्मिला के पिता ने फिर पूछा—"लड़की कहाँ की है?"

प्रोफेसर पाठक ने इस प्रश्न का उत्तर न देकर कहा—"किन्तु यह विवाह बिना आपके प्रयत्न किये नहीं हो सकता।"

उर्मिला के पिता आश्चर्य से उठ खड़े हुये—"मेरे प्रयत्न द्वारा होगा! आप कहते क्या हैं प्रोफेसर साहब? रवि अपना आदमी है। मेरी पत्नी तो उसे अपना ही लड़का समझती है। उसके लिये मैं भला, कोई प्रयत्न छोड़ रख सकता हूँ।"

प्रोफेसर साहब चुप रहे। क्षण भर बाद उर्मिला के पिता ने फिर पूछा—"बताइये वह लड़की किसकी है।"

"आपकी!" प्रोफेसर पाठक ने गम्भीरता से उत्तर दिया।

"मेरी!" वे आश्चर्य से बोले जैसे आसमान से नीचे गिर पड़े हों। "आपका अभिप्राय मेरी उर्मिला से है?" उन्होंने उसी प्रकार आश्चर्य प्रकट करते हुये पूछा।

"जी हाँ!" प्रोफेसर साहब उसी प्रकार गम्भीर थे।

उर्मिला के पिता क्षण भर सोचते रहे। इसमें कोई सदेह नहीं कि रवि उनके बहुत निकट था, परन्तु अपनी उर्मिला का विवाह उसके साथ करने के प्रश्न पर उन्होंने कभी विचार न किया था। सत्य तो यह है कि उन्हे इसका ध्यान भी न आया था। पर यदि उर्मिला और रवि एक हो जायँ, तो हर्ज ही क्या है! रवि योग्य व्यक्ति है। दो सौ रुपया माहवार वेतन पाता है। किसी भी लड़की के लिये

और क्या चाहिये ? कितना सुशील और आज्ञाकारी लड़का है! उन्होंने धीरे से उत्तर दिया—"अच्छी बात है प्रोफेसर साहब, इस प्रश्न पर मैं विचार करूँगा।"

"विचार ही न कीजिये। रवि ऐसा लड़का आपको ढूँढ़े भी न मिलेगा। और फिर वे दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं। यदि उनका परस्पर विवाह न हो सका, तो दोनों का जीवन दुःखमय हो जाया।"

"आप निश्चिन्त रहे, मैं कोई प्रयत्न उठा न रखूँगा।"

प्रोफेसर पाठक चले गये। उर्मिला के पिता बैठे सोचते रहे। विवाह के हर पहलू पर उन्होंने सोच डाला। इसमें कोई सदेह नहीं कि रवि के योग्य वर आसानी से न मिलेगा और सबसे बड़ी बात तो यह है कि रवि के और कोई है नहीं। उन्हीं के परिवार को उसने अपना सब कुछ समझा है।

प्रोफेसर साहब कहते थे कि दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं, यदि यह विवाह न हुआ तो अनर्थ हो जायगा। हाँ, अवश्य अनर्थ हो जायगा। उन्हे यौवन के वे दिन याद आ गये, जब वे ललिता से प्रेम करते थे। पर पिता के हठ के कारण उनका विवाह उससे न हो सका और फिर जब तक वह जीवित रही, उनके दाम्पत्य जीवन मे शाति नहीं थी। उर्मिला की माँ को वे प्रेम न कर पाते थे। पर जब ललिता की मृत्यु हो गई—बेचारी उन्हीं की याद में किस प्रकार घुल-घुल कर मर गई थी—तब उन्होंने अपने हृदय को उर्मिला की माँ की ओर लगाने का प्रयत्न किया था।

यह बात अवश्य है कि धीरे-धीरे वे ललिता को भूल गये और उनका दाम्पत्य जीवन भी सुखमय हो गया, किन्तु आज भी वे बहुधा यह सोचा करते हैं कि यदि उनका विवाह ललिता के साथ हुआ होता तो अधिक अच्छा था।

उर्मिला उनकी एकमात्र सतान थी। उन्होंने उसे अत्यन्त दुलार

में पाला था और वे यह नहीं चाहते थे कि उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम हो। फिर विवाह के सम्बन्ध मे तो वे उसे बिलकुल ही स्वतत्रता दिये हुये थे। उसकी शाति के लिये वे सब कुछ करने को तैयार थे। उन्होने निश्चय किया कि उर्मिला की माँ से पूछ कर वे इसका प्रबन्ध करेंगे।

उस दिन, रात में जब रवि न लौटा तब सब को बड़ी चिन्ता हुई। आखिर वह कहाँ चला गया? दिन होता तो यह कहा जा सकता था कि कहीं घूमने-घामने चला गया होगा। पर जब रात अधिक होने लगी, तो सब लोग बहुत चिन्तित हुये। उर्मिला का हृदय उद्विग्न हो उठा। वह बार-बार खिड़की से सडक पर आते-जाते हुये लोगों को देखती। शायद रवि आता हो, पर रवि की छाया भी न दिखाई देती।

कहाँ चले गये? मुझसे बता भी तो नहीं गये। यदि कहीं जाना था, तो कम से कम मुझसे कह तो जाते। पर यह असम्भव है, वे कहीं जा नहीं सकते; वे अवश्य आते होंगे। यह सोचती हुई, उर्मिला आकर फिर खिड़की के निकट खडी हो गई।

पिता ने मोहन से कहा—"जा प्रोफेसर पाठक के यहाँ तो देख आ। वहाँ न रह गये हों।"

नौकर ने उनसे प्रोफ़ेसर पाठक का पता पूछ लिया और रवाना हो गया।

जब तक नौकर वापस न आ गया, तब तक उर्मिला को शान्ति न थी। घटे भर बाद मोहन ने कमरे मे प्रवेश किया। तब उर्मिला दौड़ कर उसके पास पहुँची और बोली—"क्या हुआ, मिले?"

"हाँ मिले, वही बैठे खाना खा रहे थे। मैंने यहाँ की सब दशा उन्हे बताई। प्रोफेसर साहब हँसने लगे। बोले—'जाओ कह दो

खाना खाने के बाद चला जायगा। पर यदि कोई कारण उपस्थित हो गया और अधिक रात हो गई, तो मैं इसे न जाने दूँगा'।"

घर भर की चिन्ता मिट गई, पर उर्मिला की चिन्ता न मिटी। सच बात यह थी कि प्रोफेसर पाठक ने उर्मिला के पिता से जो बातें की थीं, उसके बाद उनके घर आने मे रवि को अत्यन्त सकोच मालूम होता था।

रवि रात भर न आया। उर्मिला को नींद न आई। सारी रात वह अपने पलग पर पड़ी हुई रवि के ध्यान मे ही मग्न रही। कभी सोचती, यदि पिता ने विवाह न स्वीकार किया तो क्या होगा। वह पिता का विरोध कर नहीं सकती है, पर क्या वह दूसरे से विवाह कर सकेगी? माना कि उसने रवि को शरीर अर्पण नहीं किया है—हृदय तो उसने अर्पण कर ही दिया है! वह किसी और की होकर कैसे रह सकती है? पर नहीं, पिता जी ऐसा कदापि नहीं कर सकते। वे उसके सुख के लिये सदैव ही सब कुछ करने को तैयार रहते हैं। और फिर यह तो उसके जीवन-मरण का प्रश्न है।

उर्मिला उठी, गिलास उठा कर सुराही से पानी उँड़ेलने का प्रयत्न किया, पर सुराही खाली थी। गिलास मेज पर ही रख कर वह फिर लेट गई; परन्तु उसका गला सूख रहा था। पानी के लिये उसे नीचे जाना पड़ा। माँ नीचे के कमरे मे सोती थीं। जैसे ही वह उनके कमरे के सामने से जा रही थी, उसने सुना, माँ कुछ बातें कर रही थीं।

उत्सुकतावश वह खड़ी हो गई, कान दरवाजे से लगा दिये। माँ कह रही थीं—"ठीक तो है।"

"हाँ, मैं भी यही समझता हूँ। लड़का अच्छा है, पढ़ा-लिखा है, नौकरी भी अच्छी है—अब हमारी उर्मिला को और चाहिये ही क्या?"

उर्मिला चौंकी। उसके विवाह की चर्चा हो रही थी? पर किसके साथ इसका उसे पता नहीं था। उसका हृदय धड़कने लगा। ऐसा मालूम होने लगा, जैसे वह अब अधिक कुछ न सुन सकेगी।

माँ ने कहा—"तो तुम शीघ्र ही उससे इस सम्बन्ध मे बातचीत करो न!"

"हाँ, देखो कल जिक्र करूँगा।"

उर्मिला बिना पानी पिये ही अपने कमरे में लौट आयी। तकिये पर सिर रख कर वह जी भर कर रोई। माता-पिता उसके विवाह के लिये दूसरे से बातें कर रहे हैं, पर वह ऐसा कदापि न होने देगी। सब कुछ हो जाय, पर वह यह कदापि नहीं स्वीकार कर सकती। पिता से वह स्पष्ट कह देगी कि वह सिवा रवि के किसी और के साथ विवाह नहीं कर सकती। यदि उसके विवाह की चर्चा दूसरी जगह की गई, तो वह विष खा लेगी।

उसे ऐसा जान पड़ा जैसे रवि की वह प्रेमपूर्ण मूर्त्ति उसके सामने खड़ी है। वह उसे देखती ही रह गई। नहीं-नही, पिता को वह अप्रसन्न कैसे कर सकती है? उनकी इच्छा के विरुद्ध वह कुछ नही कर सकती। उसमे इतना साहस ही नहीं है कि वह उनके सम्मुख कुछ कहे। उसे रवि पर एक खीझ उत्पन्न हो रही थी। वे पुरुष हैं, सब कुछ कह सकते हैं। कितने बार उसने रवि से इस सम्बन्ध मे पिता से बातें करने के लिये कहा, पर हर बार वह 'हाँ' करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करता। वह स्वय इतना सकोचशील है कि पिता से कुछ कहने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ती। पर उसे कहना ही पड़ेगा। वह उसे बाध्य करेगी कि वह पिता से इस सम्बन्ध म बातें करे। और वह कल माँ से स्वय भी कहेगी कि वह रवि को छोड़ किसी और किसी से विवाह नहीं कर सकती। माँ स्त्री हैं और एक स्त्री, दूसरी के हृदय की पीड़ा को भली प्रकार समझ सकती है।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही रवि प्रोफेसर पाठक के यहाँ से लौट कर आ गया। उर्मिला के पिता बाहर कमरे मे बैठे थे। द्वार की सीढियाँ चढ़ते ही उन्होंने उसे अपने पास बुलाया। इधर उधर की बातों के बाद

उन्होंने विवाह का प्रस्ताव उसके सामने रखा। रवि ने तुरन्त ही उत्तर दिया—"मेरे और है कौन, जो मेरे हित की बात सोच सकता है? आप और प्रोफ़ेसर पाठक जो निश्चय करेंगे, वह मेरे हित के लिये ही होगा।"

"प्रोफ़ेसर पाठक कल मेरे पास आये थे। उनकी सम्मति है कि मैं तुम्हे अपना ही बना लूँ।"

"और मैं तो आपका हूँ ही।"

"हाँ, पर अब उर्मिला को देकर तुम्हे अपना बना लेना चाहता हूँ।"

रवि ने कुछ उत्तर न दिया। सिर नीचा किये हुये वह पैरों से ज़मीन कुरेदता रहा। उर्मिला के पिता ने फिर कहा—"मैं जानता हूँ तुम्हे इसमें एतराज न होगा।"

"आपके निश्चय के विरुद्ध मैं कुछ कह ही कैसे सकता हूँ?"

"हाँ, मैं यही आशा करता था।"

रवि उठ कर भीतर जाने लगा कि पिता ने कहा—"देखो रवि, विवाह के सम्बन्ध में मैं सारा प्रबन्ध कर दूँगा। तुम्हे कोई फ़िक्र करने की आवश्यकता नहीं। जो तुम चाहते हो, मुझे बता देना।"

रवि ने कुछ उत्तर न दिया। चुपचाप अन्दर चला गया। माँ नहा रही थीं, उर्मिला बैठी तरकारी काट रही थी। रवि को देखते ही बोली—"रात भर कहाँ रहे?"

मुस्करा कर रवि चुप रहा, फिर क्षण भर बाद बोला—"ऊर्मि तुम्हे बधाई है।"

"क्यों?"

"तुम्हारा विवाह निश्चित हो गया।"

उर्मिला का जी धक् से हो गया। कल पिता माँ से यही तो कह रहे थे और आज सम्भवतः उन्होंने रवि से भी इसका जिक्र किया है।

रवि उसकी आँखों में आँखें डाल कर मुस्कराता रहा। उर्मिला की परेशानी उससे छिपी न थी। क्षण भर बाद उसने कहा—"अरे पगली, घबराती क्यो है ? तेरा विवाह मेरे ही साथ निश्चित हुआ है।"

उर्मिला के अधरो पर प्रसन्नता भरी मुस्कान की रेखा खिंच गई। हाथ के परवल को उठा कर रवि पर फेंकते हुए उसने कहा—"तुम बड़े खराब हो! मुझे परेशान करना तुम्हे अच्छा लगता है!"

रवि हँसता रहा। उसने सारी बाते उर्मिला से बताई—क्यों उसने कल प्रोफेसर पाठक को भेजा था, रात भर क्यों ग़ायब रहा और आज इतनी सुबह ही क्यों वापस आ गया। उर्मिला ने हँसते हुए कहा—"तुम बडे छलिया हो!"

माँ नहा कर आ गई थीं। उन्होंने रवि को देखते ही प्रश्नों की झड़ी लगा दी। माँ के प्रश्नों का उत्तर देकर, वह फिर बैठक में आ गया। चाय तैयार हो गई थी। नौकर ने कमरे मे चाय का 'ट्रे' लाकर रख दिया। चाय पीते-पीते रवि और उर्मिला के पिता में विवाह के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की बाते होती रहीं। आगामी फाल्गुन में विवाह होना निश्चित हुआ। सोचने लगे, अभी चार-पाँच महीने का समय है। तब तक रवि अपना सारा प्रबन्ध कर लेगा। अभी तो वह लखनऊ में एक होटल मे रह रहा है। तब तक वह अपनी गृहस्थी का पूरा प्रबन्ध कर लेगा। और इधर उर्मिला के पिता विवाह का सारा प्रबन्ध कर सकेंगे।

दशहरे की छुट्टियाँ समाप्त हो गईं। रवि फिर लखनऊ वापस चला गया। उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न था। जो वह चाहता था, वह सब कुछ उसे प्राप्त था। गिन-गिन कर वह दिन काटने लगा।

उसके विज्ञान-विभाग मे एक और प्रोफेसर थे—डाक्टर रमेशचन्द्र, वे बडे ही अच्छे और मिलनसार व्यक्ति थे। जब से रवि लखनऊ आया, रमेशचन्द्र से उसकी अधिक घनिष्ठता हो गई। रमेशचन्द्र की बग़ल में

ही एक छोटा-सा बँगला किराये पर खाली था। रवि ने उसे ले लिया और उसी में रहने लगा।

एक दिन रमेशचन्द्र के यहाँ प्रयाग से एक बैरिस्टर साहब आये। रमेशचन्द्र ने रवि का उनसे परिचय कराते हुए कहा—"आप हैं मेरे मित्र मिस्टर नरेन्द्रनाथ। आप इलाहाबाद के प्रमुख बैरिस्टरों में गिने जाते हैं।"

बैरिस्टर साहब से मिल कर रवि ने प्रसन्नता प्रकट की। बैरिस्टर साहब अपनी लड़की के लिये वर की खोज में आये थे। डाक्टर रमेश ने उन्हे रवि के सम्बन्ध में लिखा था, इसीलिये आये थे। बातचीत में डाक्टर रमेश ने रवि से विवाह का उल्लेख किया, तो रवि ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"मेरा विवाह तो निश्चित हो गया है।"

"निश्चित हो गया है?" डाक्टर रमेश आश्चर्य से चीख पड़े।

"हाँ", रवि ने धीरे से कहा।

"कहाँ? तुमने कभी बताया भी नहीं!"

"बनारस में।"

"तो विवाह कब होगा?"

"अगले फाल्गुन में।"

रमेश चुप रहा। बैरिस्टर साहब दूसरे दिन ही चले गये। सारे विश्वविद्यालय में यह समाचार फैल गया।कि आगामी फाल्गुन मास में पदार्थ-विज्ञान के लेक्चरर डाक्टर रवि का विवाह होगा।

दिन बीतते गये। उर्मिला के पत्र बराबर आते थे; परन्तु इधर ज्यों-ज्यों विवाह निकट आता जाता, त्यों-त्यों उसके पत्रों का आना भी कम होने लगा। विवाह के पन्द्रह-सोलह दिन शेष थे। डाक्टर रवि अपने बँगले के बरामदे मे कुरसी डाले बैठे थे कि उसी समय एक पुलिस इन्स्पेक्टर ने दो-तीन सिपाहियों के साथ बँगले मे प्रवेश किया। रवि ने आँख उठा कर उसकी ओर देखा, जैसे उन्हे सब कुछ समझ

मे आ गया हो। इन्स्पेक्टर ने निकट आकर कहा—"डाक्टर रवि, मैं आपको गिरफ्तार करता हूँ।" यह कह कर उसने वारट रवि के सामने रख दिया। रवि को पुलिस की गाड़ी मे बैठाया गया।

डाक्टर रमेशचन्द्र ने जैसे ही सुना, वे तुरन्त भागे हुए आये। देखा तो पुलिस रवि को मोटर मे बैठा चुकी थी। क्षण भर तक रमेश और रवि में बाते हुई। फिर यह कहते हुए रवि ने विदा ली "मैं हिंसा में विश्वास नहीं करता, पर भ्रम-वश मैं सशस्त्र क्रातिकारी दल का व्यक्ति समझ लिया गया हूँ। मुझे विश्वास है, पुलिस को अपनी गलती शीघ्र ही मालूम हो जायगी और मैं मुक्त हो जाऊँगा।"

दूसरे दिन उर्मिला के पिता ने सिगरेट मुँह में दबाये हुए जैसे ही दैनिक पत्र को हाथ मे लिया, वैसे ही उनकी दृष्टि मुख पृष्ठ के मोटे मोटे अक्षरों में प्रकाशित शीर्षक पर पड़ी—

"लखनऊ विश्वविद्यालय के डाक्टर रवि गिरफ्तार!"

उनके हाथ से अखबार छूट कर गिर पड़ा। क्षण भर तक हतबुद्धि से वे देखते रहे। फिर अखबार हाथ मे लिये हुए वे अन्दर चले गये और उर्मिला की माँ के सामने समाचार-पत्र रख दिया। सारे घर मे मातम-सा छा गया। उर्मिला ने सुना तो उसे काठ मार गया। वह पछाड खा कर गिर पडी। पूरा समाचार पढने का उसका साहस ही न हुआ। रवि क्रातिकारी है, यह उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था। रवि क्रातिकारी नहीं हो सकता!

उसी दिन उर्मिला के पिता जी लखनऊ पहुँचे। रवि पर कोई चार्ज नहीं लगाया गया था। पर पुलिस ने उन्हे एक बम-केस के सम्बन्ध मे गिरफ्तार किया था। उर्मिला के पिता ने बहुत कोशिश की कि रवि को जमानत पर छुडा ले, परन्तु उन्हे सफलता न मिली। अन्त मे बाध्य होकर उन्हे घर वापस आना पड़ा। परन्तु उनके सामने प्रश्न

था कि अब वे क्या करें ? विवाह की सारी तैयारी वे कर चुके थे। विवाह रुकना एक प्रकार से असम्भव था। फिर रवि के छूटने की कोई आशा नहीं थी। उन्होंने लखनऊ के प्रमुख वकीलों से राय ली थी। सब ने यही कहा कि पुलिस झूठे प्रमाण उपस्थित कर देगी और रवि किसी प्रकार भी बच नहीं सकता। यदि रवि को चार-छः साल की सज़ा हो गई, तो उर्मिला का विवाह तो रोक रखा नहीं जा सकता, तब फिर वे क्या करें ? समय इतना थोड़ा रह गया था कि दूसरा वर खोजना मुश्किल था। वे निराश हो गये।

लखनऊ से वापस आकर जैसे ही वे घर पहुँचे, पत्नी ने उत्सुकता से पूछा—"मेरे रवि का क्या हुआ ?"

वे पत्नी का हाथ पकड़े हुए कमरे में गये। बोले—"रवि, अब नहीं छूट सकता। उसे कम से कम चार-पाँच वर्ष की सज़ा तो होगी ही।"

"ओह ! मेरा रवि !" कह कर माँ माथा थाम कर बैठ कर गईं।

माँ की चीख सुन कर उर्मिला द्वार तक आई, वह बाहर ही खड़ी रही, फिर कुछ न सुन पा, वापस अपने कमरे में चली गई। उर्मिला के पिता ने पत्नी को समझाना प्रारम्भ किया—"अब यह समय रोने का नहीं है। समझदारी से काम लेने का है।"

"तो अब क्या करने को कहते हो ?"

"मैं कहता हूँ, दूसरा लड़का खोज निकालना होगा।"

"पर इतनी जल्दी लड़का मिलेगा कहाँ ?"

"हाँ, यह बात सही है; पर उसकी ज़िम्मेदारी मैं अपने ऊपर लेता हूँ।"

"और यदि उर्मिला इस बात को स्वीकार न करे ?"

"अब उसे स्वीकार करना ही होगा।"

माँ थोड़ी देर तक विचार करती रहीं, फिर बोलीं—"तुम भूल

करते हो, वह कभी किसी अन्य के साथ विवाह करने को राज़ी न होगी।"

"हाँ, ठीक है, वह राज़ी न होगी; पर राजी तो उसे करना ही पड़ेगा। नहीं तो व्याह का यह सारा सामान व्यर्थ जायगा। और फिर अब रवि का इन्तजार भी तो नहीं किया जा सकता। यदि किया भी जा सके, तो ऐसे आदमी को जिसके लिये सदैव ही भय बना रहे, मैं अपनी लड़की नहीं व्याह सकता।"

माँ ने थोड़ी देर सोचा, फिर बोलीं—"हाँ, ठीक कहते हो; तब ?"

"तब क्या, अब कोई दूसरा लड़का जल्दी से जल्दी खोजना होगा। व्याह नहीं रुक सकता।"

माँ इकार कैसे करतीं, बात ठीक ही थी। उर्मिला के पिता उसी दिन बाहर चले गए। उनके एक मित्र कानपुर मे सेशन जज थे। उन्होंने एक बार लिखा था कि कानपुर मे ही एक आई० सी० एस० की नियुक्ति हुई है। उनका विवाह अभी नहीं हुआ है।

विवाह निश्चित हो गया। किशोर आई० सी० एस० ने विवाह करना स्वीकार कर लिया। उर्मिला के पिता को अपनी सफलता पर बड़ी ही खुशी हुई। उन्हें यह आशा नहीं थी कि इतनी जल्दी और इतना अच्छा वर उन्हे मिल जायगा। वहाँ से सारी बातें निश्चित करके वे घर आये।

पत्नी ने जब सुना कि लड़का आई० सी० एस० है, तो वह बहुत प्रसन्न हुई, बोलीं—"मेरी उर्मिला बड़ी भाग्यशालिनी है।"

"हाँ और लड़का भी बड़ा सुशील है।"

"हाँ, पर उर्मिला—!"

"कुछ नही, थोड़े दिनों में अपने आप सब ठीक हो जायगा।"

विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। सम्बन्धियों से घर भरने लगा। उर्मिला के पिता ने विवाह के लिये एक बहुत बड़ा बॅगला किराये पर

ले लिया था। सब कुछ हो रहा था, पर उर्मिला का ध्यान जैसे इन सब बातों की ओर न था। वह विवाह की तैयारियों में तनिक-सी भी दिलचस्पी नहीं ले रही थी। ऐसी अलग-अलग रहती, मानो उसका विवाह ही न हो रहा हो। दिन-रात उसे सोचते ही बीत रहा था। ओह! वह रवि को कितना प्यार करती है! बिना उसके उसका जीवन कदापि सुखमय नहीं हो सकता; पर उसे अपने रवि से जीवन भर के लिये पृथक करने का प्रबंध किया जा रहा है।

बाहर बाजे बज रहे थे। पर उर्मिला को ऐसा जान पड़ रहा था, मानो उसका हृदय बैठा जा रहा था। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। उसने सोचा, आज उसके विवाह की तैयारियाँ हो रही हैं, कल बरात आवेगी। सब लोग प्रसन्न हैं पर उसका रवि आज जेल की कोठरी में अपने बंदी-जीवन के युग काट रहा होगा। उर्मिला की आँखों के सामने वह अँधेरी कोठरी छा गई, जिसमें रवि एक कोने में उदास बैठा हुआ है।

वह रो पड़ी। एक बार जी में आया कि वह पिता से कह दे कि वह विवाह न करेगी। वह आजन्म कुमारी रह सकती है, पर रवि की स्मृति को अपने ही पैरों से कुचलना नहीं चाहती। किन्तु साहस न हुआ।

वह अपने कमरे मे अकेली पड़ी थी। पिछले दृश्य चित्रवत् नाचने लगे। यह नया बँगला! सामने उसने दृष्टि दौड़ाई—वही खिड़की, सामने वह बैठा हुआ किताब पढ़ रहा है। एकटक वह उसे देखती रही। रवि ने मुँह फेर कर देखा, मुस्कराया और फिर पढ़ने लगा। उर्मिला के मुख से एक चीख निकल गई।

माँ बग़ल वाले कमरे मे ही रहती थीं। चीख सुन कर वह तुरन्त ही आयीं। देखा, तो उर्मिला चारपाई पर बैठी हाँफ रही थी। माँ ने पास बैठते हुए पूछा—"सपना देख रही थी क्या?"

उर्मिला ने कुछ उत्तर न दिया। वह माँ को कैसे समझाये कि वह जो कुछ देख रही है सभी एक दु:खमय स्वप्न है। वह फफक-फफक कर रोने लगी। माँ की करुणा उभर आई। उन्होंने समझा, उर्मिला ने कोई बुरा सपना देखा है। तुरन्त ही उन्होंने सुराही से पानी लेकर उर्मिला का मुँह धोया और उसे लिटा कर स्वय भी उसके पास लेट गई।

माँ की शातिपूर्ण गोद में भी उर्मिला को शाति नहीं थी। नींद उसे आ नहीं रही थी। कमरे के प्रगाढ अन्धकार मे वह ऊपर की ओर निहार रही थी जैसे इस अन्धकार में भी वह कुछ खोज निकालना चाहती हो।

बाहर के क्लाक टावर की घडी ने बारह बजाये। उर्मिला के मुँह से एक सर्द आह निकल गई। माँ जग रही थी, पूछा—"उर्मिला, तू सोई नहीं क्या?"

उर्मिला क्या उत्तर देती, बोली—"माँ नींद नहीं आ रही है।"

"बारह बज गये। अब सो जा।"

"अच्छा," कह कर उर्मिला ने करवट ले ली पर उसे नींद न आ रही थी। वह चाहती थी, माँ चली जाय तो वह जी भर कर रो तो ले। उसने धीरे से कहा—"माँ, तुम अपनी चारपाई पर चली जाओ। अब मैं ठीक हूँ। सो जाऊँगी।"

"नहीं तू सो, मैं यहीं पड़ी हूँ।"

"व्यर्थ कष्ट करने से क्या लाभ है?"

"अच्छा, तो अपनी चारपाई भी यहीं बिछाये लेती हूँ।" माँ ने उत्तर दिया और उठ कर चारपाई उठा लाने के लिये दूसरे कमरे में चली गई।

उर्मिला ने समझ लिया, उसके लिये बचना असम्भव है। वह एकान्त चाहती थी पर यह कठिन था। माँ उर्मिला को अकेले नहीं छोड़ना चाहती थी। छोड़े कैसे? उर्मिला अकेली डरती जो है।

उर्मिला ने पड़े-पड़े आँखें मूँद लीं। थोड़ी देर बाद उसे नींद आ गई। माँ ने भी अपनी चारपाई उर्मिला की चारपाई के निकट ही बिछा ली थी। उर्मिला सो रही थी पर उसका मस्तिष्क अपना कार्य कर रहा था। स्वप्नलोक की मधुरिमा उसकी आँखों के सामने बिखर गई। उसने देखा कि उसका विवाह हो गया है। वह पति के साथ है। इसी समय उसके सामने एक मूर्त्ति आ गई। उसने जो देखा तो सहम गई।

वह चीख पड़ी—"रवि !"

माँ घबरा कर उठ बैठी। उर्मिला थर-थर काँप रही थी। माँ ने उसे जगाने का निष्फल प्रयत्न किया। घर के और भी लोग जग गये। उर्मिला को होश नहीं था। पिता ने सुना तो दौड़े आये। माँ उर्मिला को पकड़ कर रो रही थी।

डाक्टर बुलाया गया। वह आया और उसने देख कर कहा—"कोई खास बात नहीं है। कोई बुरा स्वप्न देख कर इनकी यह दशा हो गई है।"

दवा दी गई। उर्मिला को होश आ गया। पर फिर भी घर वाले उसे घेरे बैठे ही रहे।

प्रातः होते-होते उर्मिला की तबियत ठीक हो गई। सारा काम ज्यों का त्यों चलने लगा; केवल माँ का हृदय एक भावी आशंका से काँप रहा था। शाम को बरात आने वाली थी। सारा बँगला मेहमानों से भर रहा था। दोपहर के बाद उर्मिला के स्कूल की अध्यापिकायें भी आ गई। आते ही वे सीधी उर्मिला के कमरे में पहुँची। देखा, उर्मिला एक आराम कुरसी पर बैठी हुई आँसू बहा रही थी। मिस सुशीला और उर्मिला में अधिक घनिष्ठता थी। उसे रोते देख सुशीला ने तुरन्त ही चुटकी ली—"ओ हो! अभी से ही याद में बेचैन हो रही हैं?"

आँख उठा कर उसने आने वालों की ओर देखा; आँचल से आँसू पोंछ डाले और कृत्रिम मुस्कराहट के साथ बोली, "आओ बैठो।"

सब की सब बैठ गई। सुशीला ने फिर पूछा—"कहो, जीजा जी की याद आ रही थी क्या ?"

उर्मिला ने कुछ उत्तर न दिया, केवल मुस्कराने का प्रयत्न भर किया।

"आई० सी० एस० मिला है, अब इसे अभिमान हो गया है।" दूसरी ने कहा।

"चुप रहो, तुम सब को यही सूझता है या और कुछ ?" उर्मिला ने कहा।

"ओ हो ! कैसा बन रही हैं, बीबी रानी ?" सुशीला बोली।

सुशीला के मुँह पर प्यार की एक चपत लगाते हुये उर्मिला ने कहा—"सुशीला, तू बड़ी वाचाल है !"

"वाचाल न होऊँ तो क्या ? मुझे तेरी तरह किसी की पत्नी थोड़े ही बनना है जो गम्भीर होने की ट्रेनिंग लूँ।"

"अच्छा भाई, मज़ाक छोड़ो, जरा यह तो बताओ तुम में से किसी ने वर को भी देखा है ?" एक अधेड़ अध्यापिका ने मुस्कराते हुये पूछा।

"हाँ, हाँ !" सुशीला ने तुरन्त कहा—"उर्मिला बहिन ने उन्हे देखा है।"

"अरे, उन्होंने तो देखा ही है और भी किसी ने देखा है ?"

उर्मिला मुस्कराई, बोली—"व्यर्थ की बाते क्यो करती हो। मैंने नहीं देखा है बल्कि सुशीला ने देखा है।"

सब हँस पडी।

इसी समय नाइन ने आकर कहा—"बिटिया रानी को बुलाते हैं।"

सब उठ कर चली गईं और उर्मिला आँगन मे माँ के पास गई। अपनी सहेलियों से क्षण भर तक बातचीत करने के बाद उसके हृदय का भार कुछ हलका हो गया था। उसने सोचा अब तो सब कुछ सहन करना ही पड़ेगा, तब क्यों न हँस कर सहन करूँ।

बरात आ गई। द्वाराचार की रीति पूरी हो रही थी। पर उर्मिला इस कोलाहल से बहुत दूर बँगले के पीछे उद्यान में बैठी हुई थी। सुशीला साथ में थी। उर्मिला ने एक दीर्घ श्वास लेकर कहा—"सुशीला, तुम्हे मैं अपनी बहिन समझती हूँ। तेरा चंचल स्वभाव यद्यपि मेरे स्वभाव से बिल्कुल भिन्न है फिर भी न जाने क्यों मेरे हृदय मे तेरे लिये अथाह स्नेह है!"

"मैं जानती हूँ।" सुशीला ने मुस्करा कर कहा।

"अच्छा, बता क्यों?"

"इसलिये कि तुम मुझे पुरुष समझती हो।"

उर्मिला हँस पड़ी। क्षण भर रुक कर बोली—"सुशीला, सच बताओ क्या तुमने कभी किसी से प्रेम किया है?"

"प्रेम! अरे तुम क्या कहती हो बहिन, प्रेम?" सुशीला ने आश्चर्य से पूछा।

सुशीला के हाथों को अपनी मुट्ठी मे दबाते हुये वह बोली—"हाँ सुशीला, प्रेम! किसी सुन्दर युवक से?"

"न बाबा, प्रेम करना सो मैं जानती नहीं।"

उर्मिला ने सुशीला के कान को पकड़ते हुये कहा—"बताओ, सच-सच!"

"अच्छा तो आप शायद प्रेम करने के लिये मुझे सज़ा देना चाहती हैं।"

"नहीं, केवल पूछती हूँ।"

हँस कर सुशीला बोली—"अरे अपने प्रेम की बात कोई बताता थोड़े ही है।"

"तो तू मुझ से भी नहीं बतायेगी! अच्छा तो जा, मैं तुझसे नहीं बोलती।"

सुशीला ने उर्मिला के कन्धों को पकड़ कर हिलाते हुये कहा—"अच्छा, अच्छा, नाराज न हो, बताती हूँ।"

उर्मिला ने मुसकरा कर कहा—"अच्छा बता!"

सुशीला क्षण भर रुकी, फिर बोली—"सुनो, जब मैं पाँच या छः वर्ष की थी तब मुझे एक लड़का बहुत चाहता था। दोनों साथ ही साथ खेलते थे। मेरे पड़ोस मे ही वह रहता था।"

उर्मिला ने बीच मे ही उसके मुँह पर हाथ रख कहा—"शैतानी करेगी तो मैं फिर तुझसे न बोलूँगी।"

"और बताती तो हूँ।"

"नही, यह मैं नहीं सुनती।"

क्षण भर रुक कर सुशीला बोली—"अच्छा, तो दूसरी कहानी सुन। मैं बैलगाड़ी पर स्कूल जाया करती थी। एक लड़का था जो रोज़ मेरी गाडी के पीछे बाइसकिल पर चला करता था। मैं गाड़ी में सब से पीछे बैठती थी। इसलिये अधिकतर पर्दे के बाहर सड़क पर देखा करती। जब तक मैं बाहर की ओर देखती रहती वह भी मेरी ओर देखता रहता। उस समय मैं यह नहीं जानती थी कि प्रेम क्या होता है। प्रेम से मैं बिलकुल ही अपरिचित थी। फिर भी उसको देखना मुझे कुछ अच्छा लगता था और मैं बीच-बीच में परदा उठा कर देख लिया करती थी।

"एक दिन सयोग से मैं पीछे न बैठ सकी, बीच में बैठी थी। गरमी के मारे जान निकल रही थी। मैंने रूमाल निकाल कर पसीना पोंछा और फिर जिस हाथ मे रूमाल था उसी हाथ को गाड़ी की खिड़की पर

रख लिया। रूमाल का कोना पर्दे के बाहर झलक रहा था। नित्य की भाँति उस दिन भी वह गाड़ी के पीछे ही पीछे चला आ रहा था। रूमाल को देख कर वह आगे बढा और एक झटके में मेरे हाथ से रूमाल गायब हो गया। मैंने घबड़ा कर परदा उठाया। देखा, वह बाइसकिल पर चढ़ा आगे चला जा रहा था। जी मे एक सतोष हुआ, चलो रूमाल उसी के पास तो गया है। गाड़ी पर बैठी हुई लडकियों ने उस दिन मेरी ख़ूब दिल्लगी उड़ाई पर चुप रही, करती भी क्या?

"दूसरे दिन मैं फिर अपने स्थान पर बैठी थी। परदा उठा कर मैंने बाहर देखा, तो फिर वह गाड़ी के पीछे था। वह मुझे देख कर मुस्कराया। जेब से मेरा रूमाल निकल कर मुझे दिखाते हुये मुँह पोंछा, फिर जेब मे रख लिया।

"मैंने परदा गिरा दिया। भय था, कोई और न देख ले। कॉपी से एक चिट निकाल कर लिखा—'मेरा रूमाल दे दीजिये।' और चिट को धीरे से उसे दिखा कर नीचे गिरा दिया। वह रुक गया। जब हमारी गाड़ी काफी दूर चली गई तब उसने सड़क पर से उस चिट को उठा कर पढ़ा, फिर जेब में रख लिया। दूसरे दिन वह जब फिर दिखाई दिया तो मैंने हाथ बाहर निकाल दिया। उसने दूर से ही एक रूमाल मेरे हाथ मे फेंक दिया। मैंने समझा, मेरा ही रूमाल है, इसलिये पकड़ लिया। हाथ भीतर लाकर देखा—बड़ा ही सुन्दर रेशमी रूमाल है। इत्र की धीमी-धीमी-सी महक रूमाल से आ रही है। मैंने उसे सूँघा, जी मे आया, इसे हृदय से लगा लूँ। पर कुछ सोच कर रह गई।

"उसके बाद हमारा परिचय बढ़ता गया। बहुधा वह हमारे मकान आता। हम दोनों उठ कर मकान के सामने वाले पार्क में चले जाते। और वहाँ घण्टो बैठ कर परस्पर बातचीत करते। हमारा प्रेम परस्पर वर्षों तक चला और फिर उसके बाद वह बाहर पढ़ने के

लिये चला गया। उसके बाद उससे मेरी कई बार भेंट हुई परन्तु अब उसके हृदय मे मेरे लिये उतना प्रेम नहीं रह गया था। मुझे उसके इस व्यवहार से बडा दुःख हुआ। कुछ दिनों बाद पिता जी की बदली यहाँ को हो गई। तब से मैं यही हूँ। मुझे पुरुषों से घृणा सी हो गई है। अब तो यदि कोई मुझसे विवाह करने के लिये कहता है तो मैं उसका मुँह नोच लेना चाहती हूँ। मैं अब जान गई हूँ कि पुरुष का प्रेम झूठा होता है।"

उर्मिला ने एक निःश्वास खींच कर कहा—"सुशीला, तुम अपने अनुभव के आधार पर ऐसा कह रही हो, पर सब मर्द ऐसे नहीं होते।"

"हो सकता है, न होते हों, पर मैं अब अधिक अनुभव करने के लिये तैयार नहीं हूँ।"

"हाँ यह और बात है।"

एक क्षण बाद सुशीला ने मुस्करा कर कहा—"अच्छा मैंने तो तुम्हे अपनी कहानी बता दी, अब तुम बताओ।"

उर्मिला ने उत्तर दिया—"तुझे बताने के लिये ही तो मैंने तुमसे तेरी कहानी पूछी थी। बिना बताये मुझे आज चैन भी तो नहीं है।"

उर्मिला ने सारी कहानी कह मुनाई। सब कुछ सुन कर सुशीला ने कहा—"उफ़! काश मुझे किसी पुरुष का इतना प्रेम प्राप्त होता बहिन, मैं उसके इस प्रेम के लिये अपना सम्पूर्ण जीवन नष्ट कर देती, आत्म-हत्या कर लेती, घर छोड़ देती, परन्तु किसी दूसरे के साथ विवाह न करती। मुझे देखो न, मेरा अनुभव ठीक तुम्हारे विपरीत है। और इसीलिये मैंने आज तक विवाह नहीं किया। पर तुम्हारी कहानी सुन कर मेरे जी मे आता है कि मैं भूल कर रही हूँ। काश! मुझे भी एक ऐसा ही प्रेमी जीवन मे मिल जाता!"

उर्मिला की आँखों से आँसू झर रहे थे। सुशीला ने उसके आँसू रूमाल से पोंछते हुये कहा—"अब रोने से क्या लाभ, उर्मिला? जीवन में जो कुछ सम्मुख आवे उसका सामना तो हँस कर करना चाहिये!"

द्वाराचार समाप्त हो गया था। सब लोग उर्मिला को खोज रहे थे। नौकरानी ने आकर उर्मिला को इस स्थान पर बैठे देख कर कहा—"अरे, बीबी रानी तो यहाँ बैठी हैं, और उधर तमाम घर खोजा जा रहा है!"

भारी मन से उर्मिला उठी और सुशीला के साथ बँगले के अन्दर चली गई।

विवाह की कार्यवाही हो रही थी। प्रारम्भिक क्रिया समाप्त होने के बाद उर्मिला को भीतर से लाकर मण्डप के नीचे बिठा दिया गया। कपड़ों के अन्दर से ही उर्मिला ने कनखियों से अपने पति की ओर देखा। मौर की झालरों के बीच उसे एक परिचित चेहरा दिखाई पडा। सहसा मस्तिष्क में एक झटका-सा लगा—'किशोर!'

वह चीख पड़ी। किशोर चौंक पड़ा। उर्मिला को गिरते हुए देख कर उसने तुरन्त ही हाथों का सहारा देकर उसे सँभाला।

विवाह के कार्य में विघ्न पड़ते देख कर सब लोग घबड़ा गए। पर किशोर ने कहा—"आप लोग घबड़ाये नहीं। ये अभी ठीक हुई जा रही हैं।" उर्मिला ने अपने को सँभाला। जल्दी-जल्दी विवाह की सारी क्रिया समाप्त हुई। उर्मिला जड मूर्ति-सी बनी विवाह के रस्मों को पूरा कर रही थी। सारी क्रिया से फुरसत पाकर वह जब अपने कमरे में आई तो ज़मीन पर गिर कर रोने लगी।

यह वही किशोर था जिसने एक बार उससे विवाह करने के लिये प्रार्थना की थी। पर उसने उसकी उस प्रार्थना को ठुकरा दिया था। किशोर भला व्यक्ति है, वह जानती है। उससे वह प्रेम भी करता है,

यह भी वह खूब जानती है। और बहुत सम्भव है इसी कारण से जब पिता जी उससे मिले थे तो उसने तुरन्त विवाह स्वीकार कर लिया था। अपनी भावी पत्नी को देखने की आवश्ककता भी उसने नहीं समझी। उसका जी जाने कैसा होने लगा। उसे लगा जैसे उसका गला घुट रहा हो। वह मन ही मन कहने लगी—

"रवि तुमने यह क्या किया? काश! विवाह के बाद ही तुम गिरफ्तार हुए होते। पर नहीं, तुम्हे तो मुझे सारे जीवन भर जलने के लिये छोड़ देना था।" इसी समय माँ आ गई। उसने तुरन्त आँसू पोंछ डाले। माँ ने कहा—"शुभ काम के वक्त तू इस प्रकार रोती है!"

उर्मिला ने माँ की गोद मे अपना मुँह छिपा लिया और फफक-फफक कर रोने लगी। माँ का हृदय ममता से भर आया। आँखों से आँसू बहने लगे।

किशोर ने सेकेण्ड क्लास का एक डिब्बा रिज़र्व करा लिया था। बनारस से जब गाड़ी रवाना हुई तब वह आकर उर्मिला के निकट बैठ गया। लाज मे लिपटी हुई उर्मिला बर्थ के एक कोने मे बैठी थी। किशोर ने उर्मिला का हाथ अपने हाथो में लेते हुये कहा—"उर्मिला, तुम्हें मुझे देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ होगा! पर मैंने तुम्हारे लिये बडी तपस्या की है और उसी तपस्या से फल-स्वरूप तुम मुझे आज मिली हो।"

उर्मिला चुप रही। कुछ बोली नहीं।

किशोर ने फिर कहा—"उर्मिला—यहाँ अब कोई नहीं है। तुम स्वतन्त्रता पूर्वक बैठो। यह चादर उतार डालो। मेरे सामने सकोच की तुम्हे आवश्यकता नहीं है।"

किन्तु जब उर्मिला हिली-डुली नहीं तब उसने स्वय ही उर्मिला के शरीर पर से चादर हटा दी। उसकी ठुड्डी पकड़ कर सिर ऊपर उठाया और अधरों पर चुम्बन का एक चिन्ह अकित कर दिया। प्रणय का

यह प्रथम चुम्बन पाकर वह कॉप उठी। आँखों से आँसू बहने लगे। किशोर ने आँसुओं को देख कर पूछा—"उर्मिला क्या तुम्हारा विवाह मेरे साथ होना तुम्हे पसन्द नहीं आया ?"

उर्मिला की वेदना फूट पड़ी। किशोर ने उसे हृदय से लगा लिया। क्षण भर चुप रह कर उसने फिर पूछा—"उर्मि, मेरी उर्मि, क्या मैंने तुम्हारे साथ विवाह करके भूल की ?"

उर्मिला ने कॉपते हाथों से पति के दोनों हाथ पकड़ लिये।

"उर्मि, बोलो।" किशोर ने अधीरता से कहा।

बडी कठिनाई से उर्मिला बोली—"आप ऐसा न कहे !"

"मुझसे प्रेम करती हो ?" किशोर ने फिर प्रश्न किया।

उर्मिला के लिये इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन था। किन्तु उसने अपने हृदय की वेदना को दबाते हुये कहा—"मैं तुम्हारी हूॅ, फिर यह प्रश्न क्यों करते हो ?"

किशोर ने उसे अक में भर लिया, बोला—"रानी, मैं तुम्हे कितना प्यार करता हूॅ यह मैं ही जानता हूॅ। जब तुमने मुझसे विवाह करने से इन्कार कर दिया था तब मैंने यह सोच लिया था कि मैं सारे जीवन विवाह ही न करूँगा। कितने ही लोग मेरे विवाह के लिये आये परन्तु मैंने सब से इन्कार कर दिया। उस दिन जब तुम्हारे पिता मेरे पास पहुॅचे तब मैंने सोचा, मेरा भाग्य प्रबल है। मन की आशा फलवती होती दिखाई पडी और मैंने तुरन्त ही स्वीकार कर लिया। उर्मि, यह मेरा भाग्य ही है कि तुम ऐसी पत्नी मुझे मिली।"

उर्मिला ने कुछ उत्तर न दिया। वह किशोर की ओर देख रही थी। वह सोच रही थी किशोर उससे कितना प्रेम करता है। पर क्या वह उसके इस प्रेम का प्रतिदान दे सकेगी। किशोर के हाथो को उठा कर उसने अपनी आँखों पर रख लिये।

किशोर ने उर्मिला को प्रसन्न रखने का प्रत्येक प्रकार से प्रयत्न किया।

उर्मिला भी पति की प्रसन्नता के लिये सदैव ही ध्यान रखती। परन्तु फिर भी उसके हृदय से रवि का ध्यान न जाता। वह चाहती कि वह रवि का ध्यान अपने हृदय से निकाल दे परन्तु फिर भी उसे सफलता न मिलती। किशोर अपनी पत्नी की इस उदासीनता का अनुभव करता; परन्तु उसे कोई कारण न दिखाई पड़ता। उसने उर्मिला से कई बार इस उदासीनता का कारण भी पूछा, उर्मिला हँस कर टाल देती। परन्तु अपने हृदय की उदासीनता को वह लाख प्रयत्न करने पर भी दूर न कर पाती। पहले तो किशोर ने समझा था कि कुछ दिनों बाद सब अपने आप ठीक हो जायगा, परन्तु जब उनके विवाह के साल भर बीत गया और उर्मिला की वह उदासी दूर न हुई तब उसने सोचा इसे कहीं घुमा लावे, शायद इसका जी कुछ ठीक हो जाय। इधर उर्मिला का स्वास्थ्य भी दिन पर दिन गिरता ही जा रहा था।

किशोर ने दो महीने की छुट्टी ले ली और पहाड़ पर जाने का निश्चय किया। उर्मिला ने बहुत समझाया, उसे कुछ हुआ नहीं है, यों ही वह उदास रहती है। परन्तु किशोर ने कहा—"नहीं उर्मिला, इस व्यवसायी शहर का जलवायु तुम्हारे स्वस्थ्य के अनुकूल नहीं पडता। थोड़े समय तक पहाड़ पर रह आने से तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक हो जायगा। फिर यहाँ की गर्मी मे जान देने से लाभ ही क्या है?"

उर्मिला ने स्वीकार कर लिया। उसके मन में अपने पति के प्रति श्रद्धा का भाव उत्पन्न हो गया था। उन्हे प्रसन्न रखने का वह हर प्रकार से प्रयत्न करती। कभी-कभी उसके मन मे आता, व्यर्थ ही वह रवि के विषय में चिन्तित रहती है। माना कि वह उससे बहुत अधिक प्रेम करती थी परन्तु किशोर भी तो उससे हृदय से प्रेम करता है। कोई व्यक्ति इससे अधिक अपनी पत्नी से क्या प्रेम कर सकता है? परन्तु फिर भी रवि की याद से वह अपने को बचा न सकती। रात मे अकेले जब वह

चारपाई पर लेटती तो उसे ऐसा जान पड़ता, जेल में पड़ा हुआ रवि उसकी याद कर रहा है।

नैनीताल जाने की सारी तैयारियाँ हो गईं। किशोर ने नैनीताल में रहने के लिये एक बॅगला पहले से ही तय कर लिया था। वहाँ का जलवायु तथा आमोद-प्रमोद पूर्ण वायुमण्डल उर्मिला के अनुकूल पड़ा। वह वहाँ प्रसन्न रहने लगी। किशोर पत्नी की प्रसन्नता को देख कर बहुत खुश हुआ। धीरे-धीरे किशोर की छुट्टी के डेढ़ महीने बीत गये। किशोर ने अपनी छुट्टी और बढ़वाने का निश्चय किया।

एक दिन किशोर और उर्मिला सध्या के समय टहलते हुये अस्त होते हुये सूर्य का पार्वतीय सौन्दर्य देखते चले जा रहे थे। नगर से दूर जाकर वे सड़क के किनारे एक शिलाखण्ड पर बैठ गये। नीचे के मकानो का धूमिल प्रकाश दिखाई पड़ रहा था। बिजली के बल्व तारो की भाँति पृथ्वी के वक्षस्थल पर जड़े हुये थे। इसी समय सड़क पर एक छोटी मोटर आकर रुक गई। ड्राइवर उतर कर ऐंजिन देखने लगा। साथ ही उसमे से उतरे एक युवक और एक युवती। दोनों पति-पत्नी मालूम होते थे। पति ने ड्राइवर से पूछा—

"क्या बात है जी?"

"कुछ नहीं हुजूर, ठीक हो जायगी।"

युवक और युवती सड़क की पटरी पर टहलने लगे। किशोर और उर्मिला भी उठे और घर लौटने के उद्देश्य से सड़क पर आये। मोटर वाले दम्पत्ति सड़क पर कुछ आगे चले गये थे। किशोर और उर्मिला भी सड़क से उतरने लगे। दम्पत्ति कुछ दूर आगे जाकर फिर मोटर की ओर लौटे। बिजली का प्रकाश उन पर पड रहा था। उर्मिला ने देखा, आश्चर्य के साथ। वह स्वप्न तो नहीं देख रही है? वे रवि और प्रमदा थे!

उसके पैर रुक गये। वह क्षण भर रुकी रह गई। इसी समय उसने किशोर को कहते सुना—"अरे प्रमदा, तुम यहाँ कहाँ?"

एक चीख के साथ उर्मिला सड़क पर गिर पड़ी।

जब उसे होश आया तब उसने देखा कि वह अपने ही बँगले के कमरे में पलग पर पड़ी हुई है। किशोर उसके निकट ही बैठा था। पूछा—"कैसी तबियत है, उर्मिला?"

उर्मिला ने उत्तर न दिया, चारो ओर चकित दृष्टि से देखा। फिर आँखे मूँद लीं।

थोड़ी देर बाद उसने पति से पूछा—"प्रमदा कहाँ है?"

"अपने घर गई? अभी आवेगी।"

उर्मिला चुप रही।

किशोर ने फिर कहा—"उसने अब विवाह कर लिया है। कोई डाक्टर रवि हैं। वे किसी बम केस में गिरफ़ार हो गये थे। पहले लखनऊ यूनीवर्सिटी मे प्रोफेसर थे, पर प्रमदा के पिता ने उन्हें बचा लिया। उन्हे सज़ा नहीं हो सकी और उसके बाद प्रमदा ने उनसे विवाह कर लिया।"

उर्मिमा अधिक सुन न सकी। थोड़ी देर चुप रह कर बोली—"मुझे कल कानपुर ले चलो।"

दूसरे दिन ही किशोर और उर्मिला कानपुर के लिये रवाना हो गये। गाड़ी पर बैठी हुई उर्मिला सोच रही थी—क्या रवि मुझे भूल गया?

माँ का हृदय

नौकर ने चाय की ट्रे लाकर सामने रख दी, पर अरुणा उठी नहीं। उसे इसका पता ही नहीं चला कि नौकर कब चाय रख कर चला गया। वह सोचती हुई बैठी रही, जैसे उसे इस दुनिया का कुछ पता ही नहीं था। ससार का यह कुछ विचित्र ही नियम है। अपराध चाहे जिसका हो, पर सजा कमजोर को ही मिलती है, और अरुणा कमजोर थी। स्त्री सदैव ही कमजोर होती है और वह भी तो थी एक स्त्री ही। समाज की दृष्टि में निहायत कमज़ोर!

खिड़की से बाहर उसने देखा, एक स्त्री अपने बच्चे को गोद मे लिये चली जा रही थी। कितना कोमल, सुन्दर बच्चा था! होगा यही कोई साल भर का; पर कितना हृष्ट-पुष्ट था। मालूम होता था जैसे कम से कम दो वर्ष का तो हो। जी में आया, स्त्री को बुला कर, क्षण भर के लिये बच्चे को अपनी गोद मे ले ले। मातृत्व जैसे उभर-सा उठा था।

स्त्री ने दरवाजे के सामने आते ही अरुणा पर एक दृष्टि डाली, तुरन्त बच्चे को चिपकाती हुई आगे बढ़ गई। माँ का भी हृदय क्या होता है। अरुण ने एक साँस खींची। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से दो बूँद आँसू टप्-टप् करके गिर गये। वह कितनी अभागी है! अपनी सतान की हत्या करने के लिये उसे स्वय ही मजबूर होना पड़ रहा है। और यदि ऐसा न करे तो आखिर और कोई उपाय भी तो नहीं है। समाज की भयकर मूर्ति की खून पीने के लिये लपलपाती हुई जीभ उसकी आँखों के सामने नाच उठी।

वह चीखना ही चाहती थी कि संभल गई। आँचल से आँसू पोंछ डाले। इसी समय नौकर ने कमरे में प्रवेश किया। चाय को उसी प्रकार मेज पर पड़ी देख कर वह निकट आया। प्याला अब भी वैसा ही खाली पड़ा था। चायदानी को खोल कर चाय छुई; बिलकुल ठंडी हो गई थी। हैं, इतनी देर हो गई और उन्होंने चाय भी नहीं पी! जाने आज कल इन्हें क्या हो गया है? वह क्षण भर सोचता रहा। मन ही मन भुनभुनाता भी रहा। अजीब है! अभी तक तो कभी ऐसी नहीं थी। समय पर सारा काम करती थी। हँसती बोलती थी। हरीश बाबू जब आते थे तो कैसी खुश दीखती थी पर अब तो जैसे कुछ इन्हें सुहाता ही नहीं।

अरुणा के साथ वह आज से नहीं है। जब वह छोटी थी तभी पिता ने रामचरण को उसके लिये नौकर रखा था। वह अरुणा को स्कूल ले जाता। उसका सारा काम करता। दिन जाते-जाते वह अरुणा से इतना घुल-मिल गया था कि अपना सम्पूर्ण ममत्व उसने अरुणा के ऊपर ढुलका दिया था। अकिंचन और एकाकी तो वह था ही। उसके और है ही कौन जिसके लिये वह कुछ ममत्व की भावना रखता। और कोई होता ही तो वह शहर मे नौकरी करने के लिये आता ही क्यों?

उसके एक स्त्री थी और एक लड़की भी थी, अरुणा जैसी ही। पर उस वर्ष के हैजे के प्रकोप को वह आज भी नहीं भूला है। कितने ही लोग उस बीमारी में चटपट मर गये थे। गाँव का गाँव खाली हो गया था। और उसी गाँव में उसका भी एक छोटा-सा घर था। एक दिन जब वह अपनी स्त्री और लड़की को गंगा जी में फेंक कर वापस आया तो उसका मन घर के भीतर जाने को न हुआ। वह तुरन्त ही शहर भाग आया। कुछ हैजे के डर से नहीं। अब उसे मृत्यु का भय तो रह ही नहीं गया था।

तीन दिन, उसने भूखे-प्यासे रह कर, शहर की सडकों की पटरी पर काटे। कहीं जाने की इच्छा ही नहीं होती थी; और इस अज्ञात शहर में वह जाय भी तो कहाँ ? और तीन दिन बाद पेट की ज्वाला ने जब उसे बहुत पीड़ित किया तभी वह अरुणा के पिता के पास आया था। उसने कहा—"मैं गाँव से आया हूँ। मेरे कोई है नहीं। स्त्री और लड़की मर गई है। इसीलिये गाँव छोड़ कर भाग आया हूँ। तीन दिन से मैंने कुछ खाया नहीं।"

उसकी कभी माँगने की आदत नहीं रही थी इसलिये कैसे माँगना चाहिए, यह वह जानता नहीं था। इसीलिये उसने अरुणा के पिता से ऐसी बातचीत की थी। पर अरुणा के पिता भावुक व्यक्ति थे। उनकी भी स्त्री, दो वर्ष हुए, मर चुकी थी। पर आज तक वे उसे भूल न सके थे। घर में अकेली अरुणा थी। यही कोई पाँच-छः वर्ष की थी। घर की देख-भाल के लिये उन्होंने एक नौकरानी रख ली थी।

रामचरण की कहानी सुन कर उन्हे दया आई। अपनी-सी पीड़ा का आभास उन्हे रामचरण मे मिला, और उन्होंने उसे अपने यहाँ रख लिया। तब से वह यहीं है और अरुणा को ही अपना सर्वस्व समझे हुए हैं।

अरुणा की यह उदासीनता उसे बहुत खली। सुबह से आठ बजने को आये पर अब तक अरुणा ने चाय नहीं पी। उसका हृदय खीझ उठा, बोला—"बिटिया रानी, तुमने चाय नहीं पी ?"

अरुणा जैसे सोते से जग गई। वह कुर्सी से उठ खडी हुई। सामने छोटी मेज पर चाय की ट्रे देख कर उसे आश्चर्य हुआ।

"तुम कब रख गये थे, रामचरण। मुझे तो पता नहीं।"

"तुम्हे पता हो कैसे ? अपने स्वास्थ्य की ओर तुम ध्यान देना तो जानती नहीं हो। जाने क्या सोचती रहती हो ?"

अरुणा सकुचा गई। ठीक ही तो है। आज कल वह कितनी परे-

शान रहती है। पर उसके पास और कोई जो उपाय नहीं है। धीरे से बोली—"हाँ आज मेरी तबियत कुछ ठीक नहीं थी।"

"पता है आठ बज गये!" रामचरण न कहा।

आँख उठा कर अरुणा ने कमरे में लगी बड़ी घड़ी की ओर देखा। हाँ, ठीक ही तो था। बड़ी सुई बारह का अक पार कर गई थी, पर छोटी अभी आठ के पास ही थी।

"हाँ, रामचरण, आज बड़ी देर हो गई।"

"और चाय भी अब ठडी हो गई।"

"तो हो जाने दो। अब तो खाना ही बन जाने का समय आ रहा है।"

"खाना बनने में अभी बहुत देर है। मैं फिर चाय बनाये लाता हूँ। पर इस बार पी लेना।"

रामचरण चला गया। अरुणा फिर आराम कुर्सी पर पड़ रही।

थोड़ी देर बाद रामचरण चाय बना कर लाया। सामने मेज पर रख कर स्वय जमीन पर बैठ गया। अरुणा उठी, मेज़ के निकट कुर्सी खिसका कर बैठ गई, और चाय मिलाती हुई रामचरण से बोली—"तुम मेरा इतना ध्यान क्यों रखते हो?"

रामचरण की आँखों मे आँसू छलछला आये—बोला; "और मेरे है ही कौन, जिसका ध्यान मैं रखूँ?"

अरुणा धीरे-धीरे चाय के घूँट उतारने लगी। चाय पीकर उसने प्याला 'ट्रे' में रख दिया और बोली—"बस रामचरण, अब तो पेट भर गया।"

मुस्करा कर रामचरण ने 'ट्रे' उठाई और कमरे से बाहर चला गया। अरुणा आकर पलँग पर बैठ गई। किसी काम मे उसका जी न लग रहा था। कमरे की दीवाल पर उसकी आँखें टिकी हुई थीं।

बड़ी देर तक वह तकिये के सहारे पलँग पर आधी लेटी-सी पड़ी

रही। जब घड़ी ने टन् टन्-टन् करके नौ बजाये, तब उसका ध्यान सहसा घड़ी की तरफ वाली दीवाल पर गया। पति की तस्वीर टँगी थी। देख कर वह जैसे कॉप गई। ओफ़! कितनी भीषण भूल!

वह अधिक न सोच सकी। हथेली से आँखे मूँद लीं। क्षण भर तक आँखें मूँदे रही, फिर निश्चेष्ट-सी होकर पलँग पर गिर पड़ी। अतीत की कितनी ही घटनाये उसकी आँखों के सामने नाच गईं।

अभी कौन बहुत पुरानी बाते हैं। तीन ही वर्ष तो हुये। वह हाई स्कूल मे पढ़ती थी। पिता जी के पास एक एम० ए० का विद्यार्थी आया करता था। पिता जी उसे बहुत चाहते थे। वह निर्धन था। पर पिता जी ने उसे उसकी निर्धनता का अनुभव कभी होने ही नहीं दिया। जब से उसने यूनीवर्सिटी में प्रवेश किया, तभी से पिता जी ने उसका पालन करना प्रारम्भ किया था। पढने मे वह सदैव सर्व प्रथम रहा, इसलिये पिता जी उसको बहुत चाहते थे। एम० ए० में पिता जी ने उसे अपना विषय लेने के लिये बाध्य किया था। वह नित्य ही आता था। पिता जी ने अरुणा को पढ़ाने के लिये उससे कहा।

जिस प्रोफ़ेसर को उसने सदैव पिता के समान समझा उसकी पुत्री को पढ़ाने मे भला उसे इन्कार कैसे हो सकता था?

अरुणा बड़ी चचल थी। सुधीर कुमार अब तक उसके पिता के पास एक विद्यार्थी के रूप में आता था। परन्तु अब जब वह अरुणा का अध्यापक होकर आया तो अरुणा के लिये और भी अच्छा हुआ। पहले दिन ही उसने सुधीर से कहा—"अब तुम मुझे पढ़ाओगे?"

"हाँ, यदि तुम पढ़ो।" सुधीर ने मुस्करा कर उत्तर दिया।

"पढ़ूँगी!" अरुणा ने कहा था।

और उसके बाद ज्यों ज्यों दिन बीतते गये सुधीर अरुणा के अधिक निकट आता गया। जब तक वह पढाता रहता अरुणा भूली-

सी बैठी रहती, गुम-सुम। कभी-कभी कोमल, मधुर डाँट के साथ सुधीर कहता—"तुम क्या सोचती रहती हो ? सुनती भी हो ?"

वह चौंक उठती; कहती—"मैं सब समझ रही हूँ।"

"हाई स्कूल की परीक्षा है, खेल नहीं है।" सुधीर मुस्करा पड़ता।

अरुणा कहती—"जब तुम प्रथम आ सकते हो तो क्या मैं पास भी नहीं हो सकती ?"

"पास ही क्यों, तुम भी तो प्रथम आ सकती हो, बशर्ते कि पढ़ने में ध्यान दो।"

"पर यदि ध्यान दूँ तो टेनिस कौन खेले ?"

सुधीर हँस कर रह जाता।

एक दिन सुधीर सुबह पढ़ाने नहीं आया। शाम को जब वह आया तब अरुणा टेनिस खेल कर लौटी ही थी। अपने कमरे में बैठी हुई वह चाय पी रही थी। सुधीर के कमरे में प्रवेश करते ही वह उठ खड़ी हुई। कुर्सी खिसका कर बोली—"बैठिये।"

सुधीर बैठ गया। रामचरण बिटिया रानी का इशारा पाकर दूसरा प्याला लाया। अरुणा ने चाय बनाई और प्याला सुधीर की ओर खिसका दिया। सुधीर अरुणा को देखता रहा। उसने प्याला नहीं छुआ।

जब बड़ी देर तक उसने प्याला नहीं उठाया तब अरुणा ने कहा—"चाय है, पीजिये न!"

"तुम जानती हो मैं चाय नहीं पीता।"

"हाँ, पर जब मैं दूँ तब भी नहीं ?"

सुधीर कोई उत्तर न दे सका। क्या कहे ? पिये या न पिये इसी असमंजस में वह पड़ा था। इसी समय अरुणा ने फिर कहा—"पियो न जी!"

सुधीर ने प्याला उठाया। एक घूँट पिया। आँखों में आँसू आ गये, जीभ जल गई। बोला—"बहुत जल रही है।"

अरुणा को दया आई, बोली—"अच्छा न पियो। शर्बत मँगवाऊँ।"

सुधीर कुछ न बोला। अरुणा ने शर्बत मँगा कर दिया। शर्बत पी चुकने के बाद पढ़ाई शुरू हो गई।

अरुणा एक गणित का प्रश्न हल कर रही थी। प्रश्न कठिन था। वह कापी पर झुकी जा रही थी। सुधीर भी कुहनी पर सिर टेके देख रहा था कि करुणा कहीं ग़लती तो नहीं कर रही है। सहसा थक कर अरुणा ने सिर उठाया। खट!

उसका सिर सुधीर की ठुड्डी से टकराया। खटखटा कर सुधीर के दाँत लड़ गये; बेचारी जीभ तो कट गई। सी-सी करके सुधीर रह गया।

"क्या हुआ?" अरुणा ने पूछा।

"दाँतों के बीच जीभ पड़ गई।"

"ओह!" अरुणा को बड़ा दुःख हुआ।

उस दिन सुधीर अधिक न पढ़ा सका। बोलने में उसे कष्ट हो रहा था, इसलिये वह जल्दी चला गया। उस दिन अरुणा का जी किसी काम में न लगा। बार-बार उसे सुधीर को चोट पहुँचाने का ध्यान आता रहा।

दूसरे दिन सुबह सुधीर आया तो अरुणा को उदास देख कर पूछा—"आज उदास क्यों हो?"

"तुम्हे चोट पहुँचाने का मुझे बहुत पश्चात्ताप रहा।" अरुणा ने मर्माहत होकर कहा।

"अरे, वाह, वह तो संयोग मात्र था।" सुधीर उसकी भावुकता पर हँस दिया।

पर अरुणा का जी पढ़ने में न लगा। सुधीर अंग्रेजी की एक कविता समझा रहा था, पर अरुणा के कानों में जैसे कुछ सुनाई ही नहीं पड़ रहा था। वह सुधीर के मुख की ओर देख रही थी—एकटक।

उसकी अँगुलियाँ मेज़ पर रखे हुए पेपर वेट से खेल रही थीं। सुधीर मेज़ पर रखी हुई किताब के निकट ही अपना हाथ रखे पढ़ा रहा था। न जाने कैसे इस बीच में भूल से अरुणा की अँगुलियाँ सुधीर की अँगुलियों से उलझ गईं। वे उलझी ही रहीं। सुधीर की अबाध वाक्धारा रुक गई, और अरुणा के शरीर में एक बिजली की सनसनी सी दौड़ गई। वह इस ससार को भूल-सी गई। वह सुधीर को एक-टक देख रही थी, मानो उसकी आँखों में समा जाना चाहती हो। सुधीर की चमकती हुई आँखें अरुणा के सुन्दर मुख-मण्डल पर जम गईं।

एक स्त्री का इतना निकट सम्पर्क सुधीर को कभी प्राप्त नहीं हुआ था। परिवार का वह अकेला था। कोई अपना भी ससार में है, यह तो उसने कभी जाना ही नहीं था। सदैव ही दूसरों की दया पर उसने अपना जीवन निर्वाह किया था, और अब भी कर रहा है। इधर थोडे दिनों से उसे प्रोफ़ेसर साहब—अरुणा के पिता का पैतृक स्नेह मिल गया था। पर स्त्री क्या होती है, यह उसने अभी तक नहीं जाना था। माँ को तो उसने जाना ही नहीं। और भी किसी स्त्री से उसका परिचय नहीं रहा।

और आज जब अरुणा की अँगुलियों से उसकी अँगुलियाँ उलझ गईं तो उसके शरीर में एक सनसनी-सी दौड़ गई। वह संसार को भूल गया। युवावस्था का रक्त संचालित हो गया और जो वह अब तक भूला था वही उसके रक्त में बहने लगा। यौवन का उन्माद उभर आया।

धीरे से उसने अरुणा के हाथों को उठाया। क्षण भर उसकी पतली सुन्दर अँगुलियों को देखता रहा फिर सहसा जैसे वह जाग उठा हो। उसका सारा शरीर काँप उठा और हाथ छूट कर गिर पड़ा—निर्जीव-सा, सुन्न से, मेज के निर्जीव काष्ठ पर। काँच की चूडी टूट कर अलग जा गिरी।

अरुणा चौंक उठी। उसे परिस्थिति का ज्ञान हुआ। ओह! क्या हो गया? उसके लिये यह सब स्वप्न था। उसने देखा, सामने सुधीर की कुर्सी खाली थी।

साड़ी के पल्ले को झटक कर ठीक करती हुई वह उठ खड़ी हुई। तो क्या सुधीर चला गया? वह दौड़ कर द्वार पर आई, देखा सुधीर सिर झुकाये 'लान' पार करके बँगले से बाहर चला जा रहा है।

वह सुधीर की ओर दौड़ी। पर निकट जाकर उसके पैर जैसे जम गये। वह आगे न जा सकी। सुधीर ने पीछे दौड़ने की आवाज सुन कर, घूम कर देखा। उसकी चाल तेज हो गई और वह बँगले से बाहर से बाहर निकल गया।

उस दिन अरुणा ने खाना न खाया। कमरे में आकर उसने दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया और खूब फूट-फूट कर रोई। पिता ने बहुत पूछा, पर वह बोल न सकी। रात भर उसे नींद न आई। उसे पश्चात्ताप हो रहा था, उसने कैसा अनुचित काम किया। उसे क्या यह करना चाहिये था? पर इसमें आखिर उसका दोष ही क्या था? उसने कुछ सोच कर तो यह किया ही नहीं था। अपने आप ही यह सब हो गया।

उसके बाद उसकी तबियत ठीक न हुई। सुबह रामचरण ने देखा तो ज्वर था। वह उस दिन स्कूल भी न गई। उसकी तबियत तीन-चार दिन तक खराब रही, पर इस बीच में सुधीर एक दिन भी न आया। वह अच्छी हो गई, स्कूल भी जाने लगी, पर सुधीर पढ़ाने न आया। और न अरुणा ने इस ओर ध्यान ही दिया। एक दिन जब पिता जी ने पूछा कि सुधीर नहीं आता क्या; तो वह काँप उठी। सुधीर का ध्यान वह कभी आने नहीं देना चाहती थी।

धीरे से उसने उत्तर दिया, "नहीं" और अपने कमरे में आकर, फूट-फूट कर रो पड़ी।

प्रोफेसर साहब ने दूसरे दिन जब सुधीर से पूछा कि तुम अरुणा को क्यो पढाने नहीं आते तो वह घबड़ा उठा। इधर जब से उस दिन की घटना घटी है वही प्रोफेसर साहब से कटा-कटा फिरता रहा है। दर्जे मे भी बैठता था तो एकदम पीछे ताकि उनकी दृष्टि उस पर न पडे।

प्रोफेसर साहब का प्रश्न सुन कर वह क्षण भर तक सोचता रहा ; फिर बोला—"आप मुझे इसके लिये क्षमा करें।"

"आखिर कुछ कारण भी तो हो!" प्रोफेसर साहब ने प्रेम पूर्वक पूछा।

सुधीर की आँखों मे आँसू भर आये। प्रोफेसर साहब से वह झूठ नहीं बोल सकता, फिर क्या करे? चुप रहा। पर प्रोफेसर साहब न माने। बोले—"तुम्हे कारण बताना होगा सुधीर!"

उसकी आँखों मे आँसू छलक आये। उसने उस दिन की सारी घटना ज्यों की त्यों प्रोफेसर साहब से कह दी। उसने न अपना और न अरुणा का ही कोई अपराध छिपाया, और फिर अपराधी की भाँति उनके सम्मुख सिर नीचा कर खड़ा हो गया।

प्रोफेसर साहब बड़ी देर तक सिर पर हाथ रखे सोचते रहे। अरुणा को वे हृदय से चाहते थे। उसकी इच्छा उनके लिये कानून थी। तो क्या अरुणा सुधीर को चाहती है? यदि चाहती है तो कोई हर्ज नहीं। सुधीर उसके योग्य है भी। माना कि वह गरीब है। पर इससे क्या? मेरी सारी सम्पत्ति पर आखिर उसी का तो अधिकार है। नहीं-नहीं वह गरीब नहीं।

"अच्छा, जाओ।" प्रोफेसर साहब ने धीरे से कहा।

सुधीर चला गया, पर उसका जी ठीक नहीं था, क्लास समाप्त होने के पहले ही वह घर चला गया।

प्रोफेसर साहब ने उसी दिन घर आकर चाय पीते-पीते अरुणा से पूछा—"क्यों अरुणा, सुधीर नहीं आता !"

सिर नीचा किये उसने उत्तर दिया—"जी नहीं।"

प्रोफेसर साहब गम्भीर हो गये; बोले—"उसने न आने का कारण मुझ से आज बताया था।"

अरुणा काँप उठी ! "उफ़ !" एक चीख-सी उसके मुख से निकल गई। चाय का प्याला हाथ से छूट कर दूर जा गिरा और उसने सिर कुर्सी पर टेक लिया।

प्रोफेसर साहब उठे, उन्होंने अरुणा को सँभाल कर उठाया और दूसरी कोच पर अपने निकट बैठा कर, सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"अरू ! इसमें इतना परेशान होने की कौन-सी बात है ? यह तो होता ही है। मनुष्य जब तक मनुष्य है तब तक तो यह होगा ही। इसमें न तो तुम्हारा अपराध है, और न सुधीर का। पर तुम्हे और अधिक गम्भीर होकर इस पर विचार करने को कहता हूँ।"

अरुणा की आँखे सजल हो उठीं। पिता का हृदय कितना कोमल होता है ! पिता देवता है ! अरुणा के हृदय को थोड़ा साहस मिला; वह शात हो गई।

प्रोफेसर साहब ने फिर कहा—"अरुणा, तुम मुझसे सच-सच बताओ। क्या तुम सुधीर को हृदय से प्रेम करती हो ?"

अरुणा का मुख लज्जा से लाल हो उठा; आँखें झुक गईं।

प्रोफ़ेसर साहब ने फिर कहा—"शर्माओ नहीं, तुम्हारे उत्तर पर ही तुम्हारा भविष्य निर्भर है।"

भविष्य ! अरुणा चौंक उठी; एक नजर उठा कर पिता को देखा।

वे फिर बोले—"मैंने सोच लिया है, सुधीर अच्छा लड़का है। इस वर्ष वह एम० ए० हो जायगा। और शायद उसे प्रोफेसरी भी

मिल जायगी, यहीं इसी यूनिवर्सिटी मे। यदि तुम सचमुच उसे प्यार करती हो तो मैं तुम्हे उसी को सौपने के लिये तैयार हूँ।"

अरुणा जैसे पृथ्वी से उठ कर स्वर्ग की ओर जा रही हो। प्रोफेसर साहब उसके सिर को अपनी हथेलियों से दबाते हुए बोले—"अरुणा!"

और अरुणा भाग गई। मुस्कराते हुए प्रोफेसर साहब ने कहा—"सोच कर मुझे उत्तर दे देना।"

उस दिन रात भर उसने सोचा। सुधीर सीधा-सादा अच्छा युवक है। उसके चरित्र के सम्बन्ध में कुछ पूछना ही नहीं है। पर क्या वह मुझसे प्रेम करता है।

अरुणा सोचती रही। पर उसने कभी अपना प्रेम प्रकट तो नहीं किया। इससे क्या, उस दिन उसकी आँखे कैसी चमक रही थीं। वह अवश्य ही प्रेम करता है।

अन्त मे रात भर के जागरण के बाद अरुणा ने यह निश्चय कर ही डाला कि वह सुधीर से प्रेम करती है, और सुधीर।उससे। सुबह ही उसने अपना निर्णय पिता को बता दिया।

अरुणा की इच्छा जान कर प्रोफेसर साहब को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उसे अपने निकट बैठाते हुए कहा—"देखो अरु, मैंने तुम्हे ही तुम्हारी माता की मृत्यु के बाद अपने जीवन का उद्देश्य बनाया है। तुम्हे जिस बात से सुख हो वही मैं करना चाहता हूँ। केवल अपने अनुभव से तुम्हारी सहायता भर ही करना चाहता हूँ। यदि तुम उसे प्यार करती हो तो मुझे विश्वास है कि तुम सुखी रहोगी। सुधीर को मैंने पिछले चार वर्षों से भली प्रकार समझने का प्रयत्न किया है। और कितनी ही बार मेरी यह इच्छा हुई कि मैं तुम्हारा विवाह उससे कर दूँ। पर मुझे कभी अनुमान नहीं होता था कि तुम सुधीर को प्यार कर सकती हो। जो भी हो, मुझे इससे बड़ी ही प्रसन्नता हुई है। मैं

आज ही सुधीर को सारी परिस्थिति समझा दूँगा; और वह कल से तुम्हें पढ़ाने भी आया करेगा।

क्षण भर रुक कर प्रोफ़ेसर साहब ने फिर कहा—"लेकिन नहीं, इस वर्ष उसका फायनल है। और उसे समय भी न होगा, इसलिये उसे बाध्य करना ठीक नहीं, और फिर अब तुम उससे पढना पसन्द भी न करोगी।"

और उसके बाद अरुणा में बहुत परिवर्त्तन हो गया। प्रोफेसर साहब ने जब सुधीर से कहा कि उस दिन की घटना के लिये तुम्हे दण्ड भुगतना पड़ेगा तो वह काँप उठा। प्रोफेसर साहब ने कहा—"तुम्हें अरुणा से विवाह करना होगा। मैंने इस पर खूब विचार कर लिया है। तुम भी सोच लो, यदि तुम्हे कुछ कहना हो।"

सुधीर के कानों को जैसे विश्वास न हुआ। वह क्या उत्तर दे यह वह नहीं सोच सका। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस दिन से उसने अरुणा को पढ़ाना छोड दिया उसी दिन से उसे एक अभाव का अनुभव होने लगा है। कभी-कभी उसका चित्त उद्विग्न हो उठता है और वह पागलों की भाँति कमरे मे इधर-उधर घूमने लगता है। अरुणा की चचल आँखें; उसकी अँगुलियों में उलझे हुए उसके हाथ याद आते ही वह जैसे अपने को भूल जाता है। लगता है, जैसे अरुणा उसकी आँखों के सामने आकर खड़ी हो जाती है। पर प्राप्य और अप्राप्य का ध्यान कर वह अपने को अरुणा की ओर से हटाने का प्रयत्न करता है। किन्तु उसे सफलता न मिलती। जितना ही वह अरुणा के ध्यान से अपने को दूर करने का प्रयत्न करता, उतना ही वह उसे और सताता।

उस वर्ष गर्मियों की छुट्टियो मे अरुणा और सुधीर का विवाह हो गया। दोनों सुखी थे। सुधीर ने अनुभव किया—पहले वह जीवन के विशाल समुद्र मे डूबता-उतराता रहा था, अब वह एक नाव पर सुरक्षित है और उसे अरुणा खे कर पार लगा रही है। जीवन मे किसी

सुख की उसे साध न रह गई थी। उसने अनुभव किया, जैसे उसकी आकाक्षाओं का एकबारगी अन्त हो गया। जिन अभावों के बीच वह जीवन के इतने वर्षों को काट रहा था वह सदा के लिये समाप्त हो गये। और वह जीवन के उन सुखमय क्षणों मे विचर ही रहा था कि विश्वविद्यालय में उसे एक अध्यापक का पद प्राप्त हो गया। जीवन का कोई अभाव अब उसके निकट नहीं था। घर मे उसका जीवन सुखमय था। बाहर सम्मान था। धनाभाव की चिन्ता न रह गई थी। उसने बाहर एक छोटे कमरे में रहना छोड़ दिया था, अब वह प्रोफेसर साहब के घर पर ही रहता था।

परन्तु उसका यह सुख स्वप्न अधिक समय तक न चल सका। प्रोफ़ेसर साहब—अरुणा के पिता बीमार पड़े। उनकी चिकित्सा का सारा प्रबन्ध अरुणा और सुधीर ने किया। हर तरह की सुविधा व उपचार का प्रबन्ध किया गया। अरुणा दिन-रात पिता की शैय्या के निकट बैठी रहती; परन्तु फिर भी वह पिता को अच्छा न कर सकी। डाक्टरों ने सलाह दी, "इन्हे पहाड पर ले जाओ।" सुधीर न विश्व-विद्यालय से छुट्टी ले ली और अरुणा और सुधीर प्रोफेसर साहब को लेकर काश्मीर चले गये। सुधीर ने एक मास की छुट्टी ली थी। एक महीना वहाँ रहने के बाद भी जब प्रोफेसर साहब की हालत न सुधरी तब वह फिर अपनी जगह पर काम करने के लिये वापस लौट आया। एक महीने ही तो यूनीवर्सिटी और खुलने वाली थी और उसके बाद फिर गर्मियों की छुट्टियाँ हो जायँगी। तब फिर उसने दो महीने पहाड़ पर ही बिताने का निश्चय किया। काश्मीर के मनोरम दृश्यों ने उसके हृदय मे एक मोह उत्पन्न कर दिया था।

सुधीर ने अरुणा के वियोग मे एक महीना बडी कठिनाई से काटा। यूनीवर्सिटी बन्द होते ही वह काश्मीर के लिये रवाना हो गया।

काश्मीर की स्वास्थ्यकर जलवायु मे प्रोफेसर साहब का स्वास्थ्य कुछ सुधर अवश्य गया था। परन्तु वे बिलकुल अच्छे न हो सके। और एक दिन जब वे घूमने गये हुये थे तभी राह में पानी बरसा। सर्दी बढ़ गई और वे भीग गये। घर आये तो उनको फिर ज्वर हो आया। इस बार का ज्वर घातक सिद्ध हुआ। आठ दस दिन बीमार रह कर वे चल बसे।

अरुणा और सुधीर पर मानो वज्र पर गिर पड़ा। झटपट उन्होंने काश्मीर से कूच कर दिया और फिर आकर अपने पुराने बँगले में रहने लगे। सुधीर ने अरुणा की वेदना को कम करने के लिये अनेक प्रकार के आमोद-प्रमोद का प्रबन्ध किया। पर अरुणा की तबियत किसी काम में न लगती थी।

जिन दिनों अरुणा काश्मीर में थी उन्हीं दिनों उसका परिचय एक युवक से हुआ था। वह भी सुधीर के विश्वविद्यालय मे पढ़ता था। बी० ए० का विद्यार्थी था। परन्तु उस वर्ष यह परीक्षा न देने का निश्चय करके स्वास्थ्य-लाभ के लिये काश्मीर चला गया था। प्रोफ़ेसर साहब को वह जानता था; इसलिये वह उन्हे बहुधा देखने आया करता था। यह अत्यन्त सभ्य था। जिन दिनों सुधीर कालेज चला आया था, उन दिनों वह अक्सर आकर अरुणा की सहायता किया करता ; कभी प्रोफ़ेसर साहब के पास घण्टों बैठा रहता, कभी अरुणा के पास बैठ कर अनेक प्रकार की बातो से उसका मनबहलाव किया करता। अरुणा ने उसको अन्य विद्यार्थियों से भिन्न पाया था। बड़ा ही सरल तथा तेज़ मालूम होता था। एकाकीपन के क्षणों को काटने के लिये वह उस युवक को अपना साधन समझती थी। उसका नाम था हरीश।

एक दिन अरुणा ने पूछा—"हरीश, तुम्हारा विवाह हो चुका है न?"

इस विचित्र प्रश्न को सुन हरीश चौंका। इस समय इस प्रश्न को पूछने की आवश्यकता क्या थी ? पर फिर भी उसने उसी प्रकार शाति से उत्तर दिया—"जी हाँ, पिछले साल हुआ है।"

"तब, तुम अपनी पत्नी को भी क्यों साथ नहीं लाये ?"

"लाभ ही क्या था ? स्वास्थ्य मेरा खराब है न कि उनका।"

"फिर भी, साथ रहते तो अधिक अच्छा था।"

हरीश चुप रहा। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया, पर अरुणा अपनी परिस्थिति पर विचार कर रही थी। सुधीर की अनुपस्थिति में एक एक क्षण उसे युग-युग-सा प्रतीत हो रहा था। पर हरीश अपनी पत्नी को साथ रखने मे कुछ लाभ नहीं समझता। उसकी पत्नी भी उसी की तरह तडपती होगी। तो क्या पुरुप सब इसी तरह होते हैं ? पुरुष क्या इतना वियोग अनुभव नहीं करता जितना कि स्त्री करती है। उसे सहसा ध्यान आया, वह भूल रही है। सुधीर ऐसा नहीं है। उसे भी ऐसी ही पीडा होती होगी, जैसी उसे मालूम हो रही है।

छुट्टियों के बाद हरीश फिर विश्वविद्यालय में आया। सुधीर उसके क्लास को पढ़ाता था, इसलिये वह सुधीर के यहाँ अधिक आता जाता था। सुधीर भी उसके सभ्य स्वभाव के कारण उससे बहुत प्रसन्न रहता। वह उसे अपना परम मित्र समझता। हरीश भी बहुधा आता, घटों सुधीर की लाइब्रेरी मे बैठ कर पढता; सुधीर के साथ-साथ चाय पीता; अरुणा से बाते करता, और फिर चला जाता। परन्तु कभी किसी को उससे शिकायतें नहीं हुईं। वह इतने सरल और हँसमुख स्वभाव का था कि जिनके बीच मे बैठता वही प्रसन्न होते थे।

दिन बीतते गये। हरीश सुधीर के परिवार के और निकट आता गया। एक दिन सुधीर चाय पी रहा था। हरीश भी चाय पी रहा था; अरुणा अलग बैठी हुई थी। सुधीर ने चाय पीते-पीते कहा—"हरीश, मैं चाहता हूँ कि विलायत जाकर 'डाक्टरेट' कर आऊँ।"

"आप अवश्य जायँ !" हरीश ने उत्तर दिया।

"हाँ मैंने कई बार सोचा कि यदि विलायत जाकर 'डाक्टरेट' कर सकता तो बड़ा अच्छा होता। पर सोचता हूँ यदि मै चला भी जाऊँ तो इनकी देख-भाल कौन करेगा ?"

"क्यों ? इनकी देख-भाल के लिये आपको क्या चिन्ता है। ये अपनी देख-भाल स्वय नहीं कर सकतीं क्या ?"

"कर सकती हैं, पर यदि प्रोफेसर साहब जिन्दा होते तो—" सुधीर की आखों मे आँसू भर आये।

अरुणा चुपचाप सब सुन रही थी। पिता का उल्लेख होते ही उसकी वेदना उभर आई। आँखों में आँसू छलछला आये। सुधीर ने देखा; उठ कर अरुणा के पास आया। सिसकियाँ भरते हुये अरुणा भीतर चली गई।

पर उसी दिन हरीश से बातचीत में यह निश्चय हुआ कि जब तक सुधीर विलायत मे रहेगा तब तक हरीश अरुणा की देख-भाल करता रहेगा। उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देगा। सुधीर के ऊपर से जैसे एक भारी बोझ उतर गया। हरीश पर उसे पूरा विश्वास था। वह जानता है कि हरीश अपनी जिम्मेदारी को पूरा करने मे कभी न चूकेगा। सुधीर ने हरीश को अच्छी तरह से समझ लिया है।

सुधीर ने विलायत जा कर 'डाक्टरेट' की डिग्री लेने का निश्चय किया। अरुणा के लिये यह बड़ा ही कष्टप्रद था। वह नहीं चाहती थी कि सुधीर को उसे छोड़ना पड़े। पहले तो अरुणा के बहुत अनुरोध करने पर सुधीर ने सोचा कि वह उसे भी लेता जाय; परन्तु ऐसा वह कर नहीं सकता था। एक तो यह प्रश्न व्यय-साध्य था। दूसरे अरुणा के साथ रहने पर उसके अध्ययन में भी कठिनाई पड़ सकती थी। अन्त मे उसने अकेले ही जाना निश्चय किया। अठारह महीने कुछ

अधिक नहीं होते, किन्तु वहाँ से डाक्टर हो कर आने पर उसका सम्मान कितना बढ़ जायगा !

अन्त मे वह दिन आ ही गया जब सुधीर ने विलायत जाने के लिये प्रस्थान किया। अरुण उसके साथ बम्बई तक गई। हरीश ने भी अरुणा का साथ दिया। वह सुधीर से कुछ इतना घनिष्ठ हो गया था कि सुधीर उसे छोड़ न सका।

हार्बर से जैसे ही सुधीर का जहाज चला, उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। तट पर खड़े हुये हरीश और अरुणा उसे देख रहे थे और हिलोरें लेता हुआ समुद्र उन्हे अलग करता जा रहा था। जब तक सुधीर दिखाई पड़ता रहा तब तक अरुणा खड़ी-खड़ी उसकी ओर देखती रही। उसकी आँखों से आँसू गिर रहे थे। जैसे ही जहाज़ शून्य के धुँधलेपन मे प्रवेश करने लगा और सुधीर न दिखाई पड़ने लगा, अरुणा पछाड़ खा कर तट पर ही गिर पड़ी। हरीश कुछ भूला-भूला सा निकट ही खड़ा था। अरुणा के गिरने की आवाज़ सुन कर वह चौंक पड़ा। झुक कर धीरे-से अरुणा को उठाया और किनारे पर पडी हुई एक बेञ्च पर लिटा दिया। जहाज के चले जाते ही वह स्थान एक प्रकार से बिलकुल शून्य हो गया था। बहुत थोडे से लोग इधर-उधर टहल रहे थे। दो चार बेञ्च के निकट एकत्रित भी हो गये। पर हरीश ने सब को अपनी-अपनी राह जाने को कह दिया।

अरुणा जब होश में आई, तब हरीश उसे लेकर वापस आया। इच्छा न रहते हुये भी उसने अरुणा के कारण ही उसी दिन बम्बई छोड दिया और घर वापस आ गया।

अरुणा के दिन बड़ी ही कठिनाई से बीत रहे थे। सुधीर की अनुपस्थिति उसके लिये असह्य हो गई। उसके पत्रों को लेकर वह दिन भर बैठी पढा करती। कभी उसके चित्र को लेकर घटो रोया करती। हरीश को अरुण की इस दशा पर बड़ा दुख होता, वह नित्य ही

उसके पास आता, उसके बहलाने का प्रयत्न करता, परन्तु कोई परिणाम न निकलता। अरुणा उसी प्रकार बनी रहती। शाम को वह अरुणा को बहुधा टहलाने ले जाता, परन्तु किसी प्रकार भी अरुणा की उदासीनता न दूर होती।

उस दिन खीझ कर हरीश ने कहा—"अरुणा, तुम अपनी तन्दुरुस्ती पर बिलकुल ध्यान नहीं देती। देखो तो कितनी पीली पड गई हो?"

सचमुच, वह बिलकुल पीली पड़ गई थी, परन्तु इसकी उसे चिन्ता न थी। सुधीर उसकी आँखों से ओझल जो था! क्षण भर तक वह हरीश की ओर देखती रही, फिर बोली—"तुम जाने क्या समझते हो, हरीश, पर मैं तो बिल्कुल अच्छी हूँ।" अरुणा मुस्करा उठी।

"ज़रूर अच्छी हो, जैसे मेरे आँखे ही न हों।"

अरुणा कातर होकर बोली—"क्या करूँ, हरीश, भूलना चाहती हूँ, सोचती हूँ वे मेरे सिर को ऊँचा करने के लिये गये हैं। आठारह महीने कुछ अधिक नहीं होते। पर जब मुझे संतोष हो, तब न! मुझे संतोष नहीं होता, हरीश!"

हरीश चुप रहा। अरुणा ने फिर कहा—"हरीश, तुम्हारा भी तो विवाह हो गया है। तुम्हारी पत्नी भी इसी प्रकार तड़पती होगी?"

हरीश के अधरों पर मुस्कराहट खेल गई। वह बोला—"तुम्हारी तरह वह कुछ पागल थोड़े ही है।"

अरुणा ने एक गहरी साँस खींची; बोली—"काश! हरीश तुम स्त्री के हृदय की पीड़ा को समझ सकते!"

हरीश गम्भीर बना रहा। बँगले से जब वह अपने घर जा रहा था तब तक मार्ग मे सोच रहा था। अरुणा ठीक कहती है। मैंने अपनी पत्नी की ओर ध्यान ही कब दिया। और दूँ भी तो क्या? उसे सब सुख है, सारे आराम घर पर हैं परन्तु अकेला मेरा अभाव उसे

कितना खलता होगा। अरुणा को कमी किसी बात की नहीं है। परन्तु बिना सुधीर के उसे किसी बात से सुख नहीं; किसी से आराम नहीं।

उसका हृदय एक बार पीड़ा से भर गया। काश, उसे पहले ही उसका ध्यान आता। उसका विवाह उसके घर वालों ने कर दिया, परन्तु कभी पत्नी की ओर वह आकर्षित नहीं हो सका, सदैव ही वह उससे दूर-दूर रहा है। कभी छुट्टियो मे घर रहा भी तो केवल चद दिनों के लिये ही।

परन्तु अरुणा की भाँति तो वह उसके लिये कभी परेशान नहीं दिखाई पड़ी। सोचता हुआ हरीश होस्टल पहुँचा। अपना कमरा खोला, लाईट जलाई और पलग पर लेट गया। आज उसे विचित्र प्रकार की अनुभूति हो रही थी। तो क्या उसकी पत्नी उसे उतना प्रेम नहीं करती जितना अरुणा अपने पति को प्रेम करती है?

सदेह उसके हृदय को कुरेदने लगा। उसने बक्स खोल कर पत्नी के पत्र निकाल। एक-एक करके पढ़े। बिलकुल नीरस से वे उसे जॅचे। किसी में कोई आकर्षण उसे न मिला। बनावट के से भाव उसे दिखाई पडे। वह उद्विग्न हो उठा। जी मे आया सभी पत्रों को फाड़ कर फेंक दे। इनके रखने से क्या लाभ? पर फिर कुछ सोच कर वह रह गया।

दूसरे दिन जब वह अरुणा के यहाँ गया तो बाहर ही उसे रामचरण मिला, पूछा—"बीबी जी कहाँ हैं?"

रामचरण ने एक साँस खींच कर उत्तर दिया—"बिटिया रानी की तबियत ठीक नहीं है। सुबह से ही उन्हे बेहोशी के दौरे आ रहे हैं।"

"डाक्टर को बुलाया था?"

"हाँ डाक्टर को बुलाया था; दवा भी दे गये हैं, पर कुछ लाभ तो दिखाई नहीं पडता।"

"कहाँ है ?"

"सोने के कमरे में।"

हरीश खटखट सीढ़ियाँ चढता हुआ बड़े हाल को पार करके सोने के कमरे में पहुँच गया। देखा तो अरुणा छत की ओर आँखें जमाये पलंग पर पड़ी है। एक कुरसी खिसका कर हरीश उसके निकट बैठ गया, पूछा—"तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है क्या ?"

"हाँ, जाने क्यों बेहोशी के दौरे आ रहे हैं। डाक्टर ने कहा—हिस्टीरिया हो गया है।"

हरीश चुप रहा। अरुणा व्यर्थ ही अपने शरीर को कष्ट दे रही है। उसका मन बहलाने के लिये उसने इधर-उधर की बातें करनी शुरू कर दीं। कभी क्लास में होने वाली हँसी की घटना सुनाई, कभी कुछ; पर अरुणा का मन उसकी बातों में न लगा।

थोड़ी देर बाद उसे फिर बेहोशी का दौरा हुआ। हरीश तुरन्त ही उठा। सामने की मेज़ पर रखी हुई दवा की शीशी लेकर सुँघायी पर होश न आया। शीशी उसने फिर मेज पर रख दी। खिड़की से बाहर की शीतल वायु आ रही थी। अरुणा के बाल उड़-उड़ कर उसके कपोलों पर फहरा रहे थे। हरीश क्षण भर अरुणा के नष्ट होते सौंदर्य को देखता रहा, फिर धीरे से अँगुलियों से बालों को हटा दिया और कुरसी पर बैठ गया।

कितनी पीली पड़ गई है अरुणा ! कितना प्रेम करती है अपने पति से वह ! यदि इसकी यही दशा रही तो सुधीर के आने के समय तक इसका जीवित रहना असम्भव ही है। वह बैठा सोचता रहा।

अरुणा की बेहोशी दूर हुई और उसने बहुत धीरे से कहा -"पानी।"

हरीश तुरन्त उठा, गिलास मे पानी भरा और एक हाथ से अरुणा के सिर को उठाते हुए गिलास को मुँह से लगा दिया।

उस दिन अरुणा की ऐसी हालत देख कर वह रात मे

होस्टल न गया। रामचरण और हरीश दोनो ही अरुणा के निकट बैठे रहे। अरुणा का सारा बदन टूट रहा था, सिर मानो फटा जा रहा हो। हरीश ने उसके सिर में तेल डाल कर अँगुलियाँ चलानी शुरू कर दीं; अरुणा चुप रही, बोली नहीं।

रामचरण बड़ी देर बैठा रहा, फिर नींद आ गई और वह बाहर जाकर सो गया। पर हरीश बैठा रहा—अरुणा के सिर पर हाथ फेरता हुआ।

अरुणा को अच्छा लग रहा था। चारपाई पर रखे हुए हरीश के दूसरे हाथ को उसने अपनी हथेलियों में ले लिया और बड़ी देर तक उसे दबाती रही। उसे अपनी स्थिति का पता नहीं था। कल्पना के समुद्र में वह बह रही थी, जिसका कोई अन्त नहीं था।

हरीश को भी पता नहीं था कि वह कहाँ है? उसके शरीर मे बिजली-सी वह रही थी, उसका सारा शरीर काँप रहा था, आँखों के सामने कुछ अजीब-सा दृश्य था। मस्तिष्क में भावना का समुद्र हिलोरे मार रहा था। उसने झुक कर अपने गरम-गरम अधर अरुणा के अधरों पर धर दिये। और फिर—!

यही तो अरुणा के पतन की कहानी है। उस दिन से हरीश नहीं आया। आने का उसका साहस ही नहीं हुआ। क्षणिक आवेश मे आकर उसने जो कुछ कर डाला था, उसके लिये उसका हृदय उसे स्वय ही धिक्कार रहा था। परन्तु उसमें और अरुणा में अन्तर है। अरुणा स्त्री है और वह है पुरुष।

अरुणा पश्चात्ताप की आग मे सुलग रही थी। वह सुधीर से अब भी प्रेम करती है, उतना ही, उससे भी अधिक पर अब वह उसके आने पर उसको अपना मुँह कैसे दिखायेगी? वह कलंकिनी है न! जी में सोचा कि आत्म-हत्या कर ले, पर आत्म-हत्या सरल नहीं है। मानव के हृदय में अपने प्राणों का जो मोह है, वही जीवन का शाश्वत

सत्य है। वह सब कुछ त्याग कर सकता है, पर अपने जीवन का मोह किसी से त्यागा नहीं जा सकता।

अरुणा को अपने कलंकित जीवन का भार ढोना ही पडेगा। वह ढो ही रही है। पर—अरुणा का हृदय कॉप उठा। वह क्या करे? अपने अन्तर का पश्चात्ताप लेकर वह जीवित भी रह सकती है, पर यह बात छिपी जो नहीं रह सकती। अपने उदर मे वह जो यह पाप की कालिमा धारण किये है, इसका वह क्या करे? इसे लेकर वह कहाॅ जाये? और जब सुधीर आयेगा तब वह क्या कहेगा? परन्तु इसमें उसका दोष ही क्या है? वह समय ही कुछ ऐसा था। पर क्या इसमें उसी का अपराध है; हरीश का कुछ भी नहीं? क्यों हरीश ने उसके मस्तक पर हाथ फेरना प्रारम्भ किया था, क्यों उसने उसके अधरों पर गर्म-गर्म चुम्बन की जलन पैदा कर दी थी? वह भी अपराधी है! नहीं, इसमें एकमात्र उसी का अपराध है। जी में आया, वह हरीश का गला घोंट दे। पर हरीश उसे मिले कहाँ। उसने तो उसी दिन से आना ही बन्द कर दिया है। अरुणा ने निश्चय किया, वह हरीश को किसी बहाने बुलायगी और फिर एकान्त में पाकर उसका गला घोंट देगी।

पर—पर! इससे क्या लाभ? उसका गला घोंट देने से क्या लाभ होगा? क्या वह बदनामी से बच जायगी? कदापि नहीं। पुलिस उसके घर को घेर लेगी। हत्यारिणी के रूप मे उसे अदालत के सामने हाजिर होना पड़ेगा! अरुणा का हृदय कॉप उठा। ओह! वह यह न करेगी! और करेगी भी कैसे? हरीश की हत्या करने की उसमें सामर्थ्य भी तो नहीं है। हरीश के सामने क्या उसमे इतना साहस हो सकेगा?

तकिये पर सिर पटक कर वह रोने लगी। रोती ही रही, जब तक कि तकिया ऑसुओं से तर नहीं हो गया। रात में जब उसका चित्त

कुछ शान्त हुआ, तब उसने निश्चय किया कि वह घर छोड़ कर कहीं भाग जायगी।

पर यह विचार भी उसके पास अधिक देर तक न ठहर सका। सुख और ऐश्वर्य में वह सदैव पली थी, अतएव उसका कुछ करने का साहस न होता था। ज्यों-ज्यो दिन बीतते जाते, त्यों-त्यों उसको जीवन से घृणा होती जाती।

बहुधा वह शीशे के सामने खड़ी होकर अपने बढ़ते हुये गर्भ को देखती, वेदना से पागल होकर वह दोनों हाथों से और घूसों से उसे पीटती। पर बाद में उसे ध्यान आता—इसमें उसका क्या अपराध? इसकी जिम्मेदारी तो अरुणा पर ही है। यह सोच कर वह फिर कलंक के उस भार को वहन करने पर बाध्य होती।

दिनों के बाद सप्ताह और सप्ताहों के बाद महीने बीतते गये और साथ ही अरुणा की चिन्ता और मनोग्लानि भी बढ़ती गई। अन्त मे सुधीर के आने का समय निकट आ गया। फरवरी में वह आ जायगा और उसी के लगभग तो उसके इस कलक के बाहर आने का भी समय होगा। पागलों की भाँति वह चीख उठी। ओह! अब वह यहाँ नहीं रह सकती। उसे यहाँ से किसी और जगह जाना ही होगा।

उसने तुरन्त ही रामचरण को बुलाया—बोली—"रामचरण!"

"हाँ!" वृद्ध नौकर की आँखों में ममता थी।

"देखो रामचरण, अकेले तुम्हीं मेरे इस ससार में हो! पिता की मृत्यु के पश्चात् केवल तुम्हीं एक हो, जिस पर मैं विश्वास कर सकती हूँ।" कह कर अरुणा रामचरण के पैरों पर लोट गई।

रामचरण घबडा कर बोला—"अरे! यह तुम क्या कर रही हो बिटिया रानी, मैं तो तुम्हारा नौकर हूँ!"

अरुणा फफक-फफक कर रोने लगी। रामचरण सान्त्वना देता हुआ स्वय रो पडा। बोला—"बिटिया रानी, मेरे कोई नहीं है, तुम्हीं हो, मैंने

तुम्हें लड़की की तरह ही सदैव समझा है। तुम्हारी वेदना मेरे लिये असह्य है।"

बड़ी देर बाद अरुणा शान्त हुई। तब बोली—"रामचरण, मैंने सुधीर के साथ विश्वासघात किया है!"

"विश्वासघात!" रामचरण चौंक पड़ा; पर अरुणा का अर्थ वह समझ नहीं सका।

"हाँ, रामचरण, तुम देखते हो मैं कितनी चिन्तित रहती हूँ; पर सच कहती हूँ, तुमसे छिपाती नहीं, इसमें मेरा दोष नहीं और न हरीश का ही है। हम अपने वश में नहीं थे।"

"हरीश!" रामचरण जैसे सब कुछ समझ गया।

और फिर उसी दिन दोनों ने निश्चय किया। अरुणा घूमने के लिये चली जायगी। सुधीर के आने के पहले ही प्रसव हो जाने की सम्भावना है। और फिर उसके बाद बच्चे का कोई न कोई प्रबन्ध हो ही जायगा।

दूसरे दिन अरुणा के जाने की तैयारी हो गई और वह रामचरण को साथ लेकर बम्बई चली गई।

सुधीर के पत्र बराबर आते थे। वह लिखता—"मेरा काम समाप्त हो गया है। थीसिस दाखिल हो गया है। शीघ्र ही डाक्टरेट मिल जाने की आशा है, और उसके बाद मैं भारत आ जाऊँगा।" अरुणा को सुधीर के आने की प्रतीक्षा नहीं थी। वह चाहती थी, सुधीर और देर से आये। पर देर कैसे होगी? वह तो आवेगा ही। यदि उसके आने के पहले उसने बच्चे का प्रसव न किया तब क्या होगा? उसका हृदय काँप उठता। वह सोचती, क्यों न उनके आने के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो जाय! संसार के इतने आदमी तो मरते हैं, क्या वह भी नहीं मर सकती? पर मृत्यु भी तो हर आदमी की नहीं होती।

अन्त में वह दिन आ गया। सुधीर का पत्र मिला। वह डाक्टर होकर भारत आ रहा है। अरुणा रो पड़ी, अब वह क्या करे? कोई

उपाय उसे सूझ नहीं पड़ रहा था। रामचरण को मुँह पकड़ कर रोती। वह समझता, अभी बहुत समय है। पर अरुणा को एक-एक दिन काटना कठिन हो रहा था।

एक दिन रात में उसको प्रसव की पीडा होने लगी। अभी सुधीर नहीं आया था। उसके आने के पहले ही सब कुछ समाप्त हो जाने की आशा से उसका चेहरा खिल उठा। रामचरण ने तुरन्त ही डाक्टर बुलाया। बडी कठिनाई के बाद बच्चा उत्पन्न हुआ।

किन्तु प्रश्न अब यह था कि इस बच्चे का वह क्या करे? किसी को दे दे! पर किसको दे? यह प्रश्न उसके मस्तिष्क को परेशान कर रहा था। कितना सुन्दर-सा बालक था, बिलकुल हरीश जैसा ही। वैसी ही सुन्दर, नुकीली-सी नाक, गोरा चेहरा। कितना हृष्ट-पुष्ट था! अपने ही रक्त-मास के इस सजीव पिण्ड को, उसे समाज के भय से, नहीं-नहीं, सुधीर के लिये, किसी और को सौंपना होगा। शायद वह फिर कभी अपने बच्चे को न देख सके! उसका हृदय माँ के स्नेह से आर्द्र हो गया; वह रोने लगी।

रामचरण ने समझाया। हृदय की कमज़ोरी पर विजय पाना ही होगा। पर विजय वह कैसे पाये? वह एक नारी जो है, और है माँ! माँ सब कुछ सह सकती है, पर अपने ही बच्चे को वह अपने से अलग नहीं कर सकती। एक बार उसकी इच्छा हुई कि वह बच्चे को किसी को न दे। सुधीर के आने पर सारी बातें सच-सच बता दे और कह दे कि यह अबोध बालक उसके यौवन की भूल है। फिर चाहे सुधीर उसे अपमानित ही क्यों न करे, उसे त्याग ही क्यो न दे, पर अपनी सन्तान को तो वह अपने पास ही रख सकेगी।

किन्तु उसी समय उसे ध्यान आया—सुधीर का। सुधीर के बिना वह रह भी तो नहीं सकती। कितना वह उससे प्रेम करता है! बिना सुधीर के उसका जीवन कैसा होगा, यह अनुमान कर वह काँप उठी।

नहीं, वह सुधीर को नहीं छोड़ सकती। जीवन की सम्पूर्ण आकांक्षाओं पर वह पानी नहीं फेर सकती। तब फिर वह क्या करे? उसे दो में से एक को चुनना ही पड़ेगा।

अरुणा रो पड़ी। पार्श्व में पड़ा हुआ बच्चा रो पड़ा। उसने उसे हृदय से लगा लिया। वह सब कुछ छोड़ देगी—पर बच्चे को नहीं छोड़ सकती। सुधीर से वह प्रेम करती है और सदैव करेगी; पर अपने बच्चे को छोड़ कर वह सारे संसार को भी नहीं लेना चाहती। समाज! समाज का उसे भय नहीं। वह समाज को कुचल सकती है। समाज उसे कलंकिनी कह सकता है। पर वह अपने को कलंकिनी नहीं समझती। वह शुद्ध है, उतनी ही, जितनी पहले थी।

सुधीर के आने का समय निकट आता जाता था। पर बालक के लिये वह कुछ निश्चित न कर सकी। मकान के बरामदे में बैठी हुई वह सोच रही थी। बालक को रामचरण लिये हुये था। सहसा रामचरण ने कहा—"बिटिया रानी, एक बात कहूँ, मानोगी?"

"क्या, रामचरण!"

"यह बच्चा मुझे दे दो।"

अरुणा उसे देखती रह गई। रामचरण फिर बोला—"मैंने जन्म भर तुम्हारे यहाँ नौकरी की। अब बूढ़ा हो गया हूँ। नौकरी के योग्य भी नहीं हूँ। अच्छा हो, तुम मुझे छुट्टी दे दो। बच्चे को लेकर मैं अपने घर चला जाऊँगा और वहीं रह कर इसका पालन-पोषण करूँगा। यदि हो सके तो मुझे कुछ भेजती रहना। थोड़े में ही मेरी गुजर हो जायगी।"

अरुणा सुनती रही। अपने बच्चे के लिये इससे अच्छा प्रबंध क्या हो सकता है? पर सुधीर जब तक न आ जाय, तब तक वह रामचरण को छोड़ कैसे सकती है? अन्त में यह निश्चय हुआ कि तब तक के लिये एकाध नौकरानी रख ली जाय। सुधीर के आने पर अरुणा उसके

साथ चली जाय और रामचरण बच्चे को लेकर अपने घर चला जाय। अरुणा के चित्त को शाति मिल गई।

जिस दिन सुधीर का जहाज़ बम्बई के बदरगाह पर आने वाला था, उस दिन अरुणा तट पर गई। उसका हृदय भारी था। चेहरा पीला पड़ गया था; अन्तर में एक वेदना बार-बार उभर कर आँखों की राह टपकना-चाहती थी। पर फिर भी वह बाहर से प्रसन्न होने का प्रयत्न कर रही थी।

सुधीर ने उसे देखते ही अक में भर लिया; अरुणा रो पड़ी। उसके बालों पर हाथ फेरते हुये उसने कहा—"अरे, अरुणा, यह डिग्री तो मैं देखता हूँ, मुझे बड़ी महॅगी पडी। तुम कैसी हो गई हो? मालूम होता है, वर्षों से बीमार हो। अपनी बीमारी की खबर भी तुमने कभी मुझे नहीं दी।"

अरुणा ने हॅसने का प्रयत्न करते हुये कहा—"अब तुम आ गये। अब सब ठीक हो जायगा।"

सब लोग वहॉ आये जहॉ अरुणा ठहरी थी। रामचरण ने उसी दिन छुट्टी ले ली। बच्चे को लेकर वह गाँव चला गया। अरुणा और सुधीर दो-तीन दिन तक बम्बई में रह कर घर आ गये।

सुधीर ने विश्वविद्यालय में अपना काम प्रारम्भ कर दिया। अरुणा को प्रसन्न रखने का वह बराबर प्रयत्न करता, पर वह उदास ही रहती। उसका स्वास्थ्य भी दिन पर दिन गिरता जाता। बच्चे का ध्यान उसे बराबर ही रहता। वह बहुत प्रयत्न करती कि उसे भूल जाय, पर भूल न पाती। हर महीने रामचरण का पत्र आता—"बच्चा अच्छा है।" वह पत्र को चुपचाप, एकान्त में बैठ कर, एक नहीं, कई बार बढती और हर महीने अपने ही हाथों से एक गहरी रकम का मनीआर्डर रामचरण के नाम भेज देती।

एक दिन सुधीर ने पूछा—"हरीश आजकल नहीं आता, क्या?"

अरुणा काँप उठी, हरीश का नाम सुन कर। पुरानी घटनाये फिर

उसकी आँखों के सामने नाच गई। अपने को संयत करते हुये, उसने उत्तर दिया—"वे बहुत दिन से नहीं आते।"

"हाँ, मुझे कालेज में भी नहीं दिखाई पड़ता। शायद पढना छोड़ दिया?"

"हो सकता है!"

"आदमी बड़ा अच्छा था। कुछ दिन तक उसके पत्र मुझे विलायत में मिलते थे। पर बाद में जब बन्द हो गये तब से आज तक उसका पता नहीं लगा।"

अरुणा अधिक नहीं सुन सकी। उठ कर अपने कमरे में चली गई। ऐसी परिस्थिति मे वह सुधीर के पास बैठी भी तो नहीं रह सकती। कमरा बन्द कर, वह पलग पर पड़ कर, जी भर कर रोई। सुधीर को इसका पता नहीं था। वह अधिकतर अपने अध्ययन में ही व्यस्त रहता था।

उस दिन संध्या समय सुधीर ने कहा—"अरुणा, चलो घूम आवे।"

अरुणा की इच्छा कहीं जाने की नहीं थी, पर सुधीर की इच्छा की पूर्त्ति भी तो उसे करनी ही है। वह उठी, कपड़े बदले और चलने को तैयार हो गई।

बसन्त की धीमी-धीमी हवा बह रही थी और सुधीर की मोटर शहर से बाहर चली जा रही थी। अरुणा उसकी बग़ल मे बैठी थी। आस-पास खेतों की हरियाली फैली थी। अरुणा के व्यथित चित्त को कुछ शाति मिल रही थी।

सहसा मोटर फिर—र—करती हुई रुक गई। सामने एक बाईसकिल थी। युवक ने बाईसकिल से उतर कर अलग होने की कोशिश की। उसी समय सुधीर ने कहा—"अरे! कौन, हरीश?"

युवक चौंका, क्षण भर सुधीर की ओर देखता रहा। फिर उसके हाथ अभिवादन को उठ गये।

अरुणा की दशा शोचनीय हो रही थी। हरीश का नाम सुन कर वह चिल्लाना ही चाहती थी, पर रोके रही। यह हरीश, जिसने उसके जीवन को नष्ट किया है और आज वही हरीश उसके सम्मुख खड़ा है। उसका मस्तिष्क चकराने लगा, शरीर ढीला हो गया और वह बेहोश हो गई। सुधीर हरीश से बातें कर रहा था। उसे इसका ध्यान भी नहीं था कि अरुणा पर क्या बीत रही है। इतने में, अरुणा को सीट पर ही लुढकते देख, हरीश के मुख से निकल गया—"अरे!"

सुधीर का ध्यान आकर्षित हुआ। उसने देखा, अरुणा बेहोश है। तुरन्त ही उतर कर उसने अरुणा को पीछे की सीट पर लिटा दिया।

"जब मैं विलायत चला गया था, तभी से इनकी ऐसी दशा हो गई है।" सुधीर ने कहा।

क्षण भर तक वह अरुणा के मुख पर हवा करता रहा, फिर हरीश से बोला—"हरीश, बाईसिकिल तुम मोटर के पीछे बाँध दो और मोटर पर बैठ जाओ। इनकी हालत ठीक नहीं है।"

हरीश कुछ बोल नहीं सका। इच्छा न रहते हुए भी वह 'नहीं' न कर सका। बाईसिकिल पीछे बाँध कर वह अरुणा के सिरहाने बैठ गया। सुधीर ने मोटर शहर की ओर वापस की।

बँगले के निकट पहुँचते-पहुँचते अरुणा को होश आ गया। उसने आँखें खोलीं, हरीश को सिरहाने बैठा और अपनी ओर देखते हुए देख कर वह फिर चीख पड़ी और चीख के साथ ही वह फिर बेहोश हो गई। मोटर ने बँगले मे प्रवेश किया।

सहारा देकर सुधीर और हरीश ने अरुणा को ले जाकर पलंग पर लिटा दिया। डाक्टर बुलाया गया और परिचर्या शुरू हो गई। जब अरुणा को होश आया तब हरीश जा चुका था। सुधीर ने उसे बताया, हरीश बी० ए० करने के बाद अपने घर चला गया था। पर अब वह यहीं नौकर हो गया है।

अरुणा की दशा दिन पर दिन बिगड़ती गई। बहुत दवा करने पर भी उसकी दशा सुधरती न दिखलाई पड़ी। सुधीर ने पत्नी की परिचर्या करने के लिये यूनीवर्सिटी से छुट्टी ले ली। परन्तु कुछ लाभ होता न दिखाई पड़ रहा था।

एक दिन सुधीर अरुणा के पास बैठा हुआ उसके हाथ को अपने हाथ मे लिये अरुणा के अन्त होते हुए जीवन को देख रहा था। चेहरा उसका बिलकुल पीला हो गया था। डाक्टरों ने जवाब दे दिया था, पर सुधीर के हृदय में निराशा नहीं थी। उसे विश्वास था, अरुणा उसे छोड़ कर नहीं मर सकती।

अरुणा सुधीर की आँखों को देखती रही। सहसा बोली—"अब मैं न बचूँगी, पर एक बार तुम रामचरण को मेरी हालत की खबर कर दो और लिख दो, एक बार वह मुझे दिखा जाय।"

सुधीर उठा, तुरन्त ही पत्र लिख कर नौकर के हाथ पोस्ट बक्स मे डालने के लिये दे दिया। रामचरण के आने की प्रतीक्षा में अरुणा का चेहरा कुछ प्रसन्न दिखाई दिया।

रामचरण तीसरे दिन आ गया। बच्चे को गोद में लिये हुये जैसे ही उसने कमरे में प्रवेश किया, अरुणा बिजली की भाँति उठ खड़ी हुई। उसने रामचरण के हाथों से बच्चे को लेकर हृदय से चिपका लिया। बच्चा भी इस प्रकार उसके हृदय से चिपक गया जैसे सदैव से ही वह उसके पास रहा हो। अरुणा की आँखों से आँसू बहने लगे। सुधीर अलग बैठ सब देख रहा था। उसे यह स्वप्न-सा प्रतीत हो रहा था।

हृदय का उद्वेग शात होते ही अरुणा ने सुधीर को अपने निकट बुला कर बैठा लिया, और बोली—"नाथ, मैं कलकिनी हूँ और वही कलंक मुझे खाये डाल रहा है। अब मैं जीवन से निराश हो गई हूँ, इसलिये तुम्हे सब बता देने की इच्छा होती है।"

सुधीर ने रोकने का प्रयत्न किया, पर अरुणा बोली—"नहीं, मुझे रोको न। कह लेने दो।"

फिर उसने सारी घटना ज्यों की त्यों सुधीर के सम्मुख खोल कर कह दी। सुधीर सुनता रहा। जब अरुणा चुप हो गई, तब सुधीर बोला—"अरुणा, इसमे तुम्हारा दोष नहीं, तुम अब भी पहले-सी ही पवित्र हो। पर दुख मुझे यह है कि तुमने मेरा विश्वास न किया। यह बच्चा तुम्हारा है तो मेरा क्यों नहीं? इसे अलग करने की तुम्हे क्या आवश्यकता थी?"

यह कह कर उसने अरुणा की गोद से बच्चे को ले लिया। उसे बड़ी देर तक चूमता रहा। बच्चे ने भी जैसे अनुभव किया, उसे पिता का संरक्षण मिल गया।

अरुणा यह सब स्वप्न की भाँति देखती रही। उसकी आँखे मानो कह रही थीं—"सुधीर, तुम मनुष्य नहीं, देवता हो।"

उस दिन से रामचरण फिर कोठी में रहने लगा। बच्चे की देख-भाल वही करता है, पर डाक्टर कहते हैं, 'अरुणा अच्छी हो रही है।' क्षय की जिस अवस्था में वह पहुँच गई थी, उससे बचते कभी कोई देखा नहीं गया, यह डाक्टरों की सम्मति है।

अन्त समय की याद

गगा की यह अविरल धारा निश्चेष्ट-भाव से बहती चली जा रही है। बहती चली जा रही है इसलिए कि शायद मेरे जीवन की भाँति इसकी भी यही प्रकृति है, यही स्वभाव है। कल-कल, छल-छल, आखिर यह सब है क्या ? वह देखो, सरिता के फेनिल वक्षःस्थल पर वह लोल लहर उठी और बह चली। अरे, टकरा गई जा कर, वह उसी कूल से। उसकी गति को उसी कूल ने रोक लिया, जिसको किसी समय वह स्वय ही काट देती है। कितनी बड़ी जीवन की कहानी लिखी हुई है उस छोटी-सी लहर के उस छोटे से जीवन में; कितनी करुणा है, उसके मिटने के इस इतिहास में। और इसी भाँति तो मैं भी इस नाव पर बैठा हुआ क्षितिज की ओर देखा करता हूँ। मेरी दृष्टि भी उस महाशून्य से टकरा कर वापस आ जाती है, जैसे उसका और कोई काम नहीं, कोई और उद्देश्य नहीं।

एक दिन सोचा था, गगा के तट पर कभी न आऊँगा। दस वर्षों की वह लम्बी अवधि बीत गई; लेकिन आज तक गगा के कभी दर्शन नहीं किये। कितना बडा वह कुम्भ का पर्व चला गया, पर मैं न आया कभी भी, गगा के इस तट पर। कुम्भ के दिन भाभी ने कितना हठ किया, माँ ने कहा, पर मेरे दिल ने एक न सुनी। कुछ अजीब मेरा स्वभाव है कि जो दिमाग मे आ गया वह आ गया। विचारों को बद-लना तो मानो मैं जानता ही नहीं।

यही तो बात है कि डाक्टरो के लाख समझाने-बुझाने पर भी मैंने अब तक उनकी यह सलाह न मानी। लाख उन्होंने कहा कि

नदी पर रहना ही मुझे बचा सकता है, पर मैंने एक न सुनी। उन बेचारों को इस बात का पता ही क्या है कि इस जीवन का जितना मोल वे समझते हैं, उतना मेरी दृष्टि में नहीं है। जीवन का मोह किसे कहते हैं, यह तो शायद मैं जानता ही नहीं। मुझे तो जीवन से कुछ घृणा-सी हो चली है। चाहता हूँ कि किसी प्रकार इस वेदना से छुटकारा मिले। इसलिये तो जब मुझे इस बात का भली प्रकार विश्वास हो गया कि अब मैं नहीं बच सकता; तभी मैंने गगा के वक्षःस्थल पर नाव में रहने की बात स्वीकार की है। मैं जानता हूँ, और भली प्रकार जानता हूँ कि डाक्टरों की ये शीशियाँ, गगा की यह भीनी-भीनी शीतल वायु मुझे नहीं बचा सकती। ससार की कोई भी शक्ति मुझे रक्षित नहीं रख सकती। उषा की सुनहली किरणें जब पानी पर खेलने लगती हैं तब मेरी दृष्टि सहसा उस विस्तृत लाल आसमान की ओर उठ जाती है। मुझे उषा की वह ललाई ऐसी मालूम होती है जैसे किसी ने मेरे खून से ही आसमान को रग दिया हो।

अभी कल ही तो डाक्टर कहता था कि कोई परिवर्त्तन नहीं दिखाई पडता। मैं कहता हूँ, वह अधा है। उसे मुझे परिवर्त्तन नहीं दिखाई पडता। मैं जानता हूँ कि मैं प्रतिदिन आगे बढ रहा हूँ। लेकिन जैसे दुनिया को यह सब बात समझ में ही नहीं आती। मैं जानता हूँ कि मैं अब चला, अब चला। इसलिये तो आज सोचा है कि अपने दिल का राज, जिसे एक जमाने से अपने कलेजे मे छिपा कर रखा है, दुनिया को बतला दूँ। इसलिये नहीं कि वह मेरा राज़ जानने के लिये उत्सुक है, इस लिये नहीं कि मेरे उस राज से दुनिया का कोई लाभ ही होगा, बल्कि उस बात को कह देने के लिये मैं स्वय ही आज बेचैन हो रहा हूँ।

अभी मेरी नाव जब उधर दूर तक बढ़ गई थी, मैंने देखा कि तट पर एक युवक और एक युवती बैठे हुये हैं। कितनी पुरानी स्मृतियाँ

बरबस आँखों के सामने आ गई । वे ही मुझे कुछ कह देने के लिये बाध्य कर रही हैं । सोचता हूँ, न कहूँ, पर तबियत जाने कैसी हो रही है । दिल ने चाहा कि उस जोडी को चन्द मिनटों तक देखता रहूँ, परतु इन स्मृतियों ने चैन न लेने दिया । कौन जाने वे गंगा के तट पर खडे हुये क्या प्रेम प्रतिज्ञा कर रहे थे । जीवन मे अनुभवहीन—उनको यह पता नहीं कि गगा का यह कूल सदैव ही कटता रहता है, इसकी नित्यता का भी कोई विश्वास है ? लेकिन फिर भी दुनिया जाने क्यों, जान कर भी अनजान बनना चाहती है ।

कितनी ही शाम मैं भी तो इसी तट पर उसके कोमल करों को अपनी अँगुलियो मे लपेट कर टहला था । उस समय क्या मुझे विश्वास था कि मेरी प्रेम—मैं उसे प्रेम ही तो कहता था—मुझसे कभी विलग हो सकेगी । कितनी ही बार हम लोगों ने परस्पर इसी तट पर प्रेम की प्रतिज्ञा की थी और अन्त मे हमारा अन्तिम मिलन और अन्तिम प्रतिज्ञा भी तो यहीं पर हुई थी । फिर भला यदि मैं इस गगा के तट से दूर-दूर न रहने का प्रयत्न करूँ तो क्या करूँ ? पर आज तो मैं इस स्थान पर चिर-अवसान प्राप्त करने ही आया हूँ ।

कितनी ताजी है वह स्मृति, जब पहले-पहल मैंने उसे देखा था । समय की काली चादर उसकी चमक को आज तक न मेट सकी । आज भी मुझे याद है, बैंगनी साड़ी में, यौवन की सम्पूर्ण लज्जा समेटे हुये स्कूल की प्रधान अध्यापिका के कमरे में उसका सहसा प्रवेश करना । मैं प्रधान अध्यापिका के पास अपनी छोटी बहिन के दाखिले के सम्बन्ध मे गया था । वे वहाँ नहीं थीं । मैं कमरे मे बैठ रहा, क्योंकि दाई ने ऐसा ही करने को कहा था । युवावस्था का प्रारम्भ था; इण्टर में पढ़ता था । हेड मिस्ट्रेस के कमरे मे बैठा हुआ मैं कितने ही रोमास के प्लाट सोच रहा था । सोचता था, यदि अभी कोई लड़की मुझे देख ले, मुझसे प्रेम करने लगे—बस, इसी प्रकार कल्पना की उड़ान मे मैं उडा

जा रहा था कि सहसा कमरे का पर्दा उठा कर वह आ गई। क्षण भर ठिठकी, मैंने आँख उठा कर देखा और बस मेरी कल्पना साकार हो उठी। वह सकुची और लौटना चाहती थी कि मैंने पूछा—"हेड मिस्ट्रेस जी कब तक आयेंगी?"

उसने मेरी ओर देखा। शायद उसे मेरे इस साहसपूर्ण प्रश्न पर आश्चर्य भी हुआ हो। क्षण भर देखती रहने के बाद उसने सोचा, शायद उत्तर न देना भी असभ्यता होगी। इसलिये उसने उत्तर दिया—"घण्टा बजता ही होगा।"

और यह कह कर वह भाग गई। मैं बैठा सोचता रहा। उस दिन वहाँ से वापस आने पर भी जैसे वह भूलती हुई नजर न आई। जैसे वह मेरे विचारों में बस-सी गई। पर उसे देखने का फिर कोई मौका न मिला। एक आध बार स्कूल गया भी, पर वह दिखाई न दी। उसे देखने का और कोई साधन न सूझ पड़ा।

उस दिन कालेज से लौट रहा था कि लड़कियों के स्कूल की गाड़ी आती दिखाई पड़ी। सामने ही वह बैठी थी। मेरी दृष्टि पडी और सहसा मेरे हाथ उठ गये, नमस्ते करने के लिये। वह कुछ सकुचाई, लेकिन उसने दोनों हाथ जोड़ लिये। सोचा, ऐसा अवसर मुश्किल से हाथ लगेगा। बाइसिकिल पर ही गाड़ी के पीछे-पीछे चला। हाँ, रहा काफी दूर पर। गाड़ी शहर के आधे हिस्से में घूम आई, पर उसका घर ही न आया। आखिर वह शहर के एक मुहल्ले मे उतरी। वह मुहल्ला गरीबों का मुहल्ला था। पहली ही बार मैं उस मुहल्ले में गया था। कितने ही निर्धन कुटुम्ब इस मुहल्ले में अपनी मरजाद समेटे हुये रहते थे। इसी मुहल्ले की एक गन्दी गली के सामने वह उतर पड़ी। कितने ही लड़के सड़क पर मिट्टी से खेल रहे थे।

वह गाडी से उतरी, सहसा मुझे वहाँ देख कर सहमी और झुक गई गाड़ी के अन्दर। मुझे वहाँ देख कर उसे आश्चर्य अवश्य

नहीं था। यथा समय मैं तैयार हो रहा था कि छोटी बहिन की गाड़ी आ गई थी। वह खट-पट करते कमरे में आई और एक लिफ़ाफ़ा मेरे हाथों में देकर बोली—"लो, तुमको उन्होंने दिया है।"

खत ले लिया। लिफाफे के ऊपर छोटे-छोटे सुन्दर अक्षरों में मेरा नाम लिखा था। सोचा, मेरे नाम यह स्कूल का लिफाफा भला क्यों आया। छोटी रन्नो खड़ी थी। शायद वह यह दिखाना चाहती थी कि आज उसने सब पहाडे सही लिखे हैं। पर मैंने उसकी ओर ध्यान न दिया और वह अपनी स्लेट-किताब लिये अन्दर जाकर माँ को दिखाने लगी। मैंने लिफाफा खोला। पत्र में केवल इतना लिखा थाः—

श्रीमान्,

आपको क्या कह कर सम्बोधन करूँ, समझ नहीं पड़ता। आपसे प्रार्थना केवल यह है कि मुझ पर मेरी सहपाठिनें बहुत हँसती हैं और चारों ओर मेरी बदनामी फैल रही है। यदि आप गाड़ी के साथ न चला करें तो बड़ी कृपा हो।

आपकी कोई।

पत्र पढ़ कर जैसे मुझे काठ मार गया। इसका मतलब था मैं अब न जाया करूँ। इतने दिनों में मैं उसे प्रेम करने लगा था। जी में बहुत कुड़मुड़ाया, कपड़े उतर कर फेंक दिये, घर के नौकर से लेकर बड़ों तक से थोड़ी-थोड़ी बात से बिगड़ पड़ा। तबियत में अजीब परेशानी और उलझन पैदा हो गई। बार-बार अपने को समझाता, पर कुछ बात समझ में न आती। दूसरे दिन कालेज से चला तब तबियत बहुत हुई कि एक बार उसे देखता चलूँ, परन्तु उसकी आज्ञा का ध्यान आया। साहस न हुआ उधर जाने का। चुपचाप चला गया।

एक सप्ताह इसी प्रकार बीत गया पर मैं न गया उसे एक बार भी देखने। नवें दिन फिर रन्नो एक पत्र लाई और दे गई। वही लिखावट थी। खोल कर पढ़ा। उसने लिखा था—

मेरे चितचोर !

तुम्हे न आने को मैंने लिख दिया था। पर इसका यह तो मतलब कदापि न था कि तुम मुझे दर्शन ही न देते। आज नौ दिन हो गये, मुझे अजीब बेचैनी महसूस हो रही है। कल रविवार है यदि हो सके, तो शाम को घाट की ओर आना। मैं शाम को टहलने निकलती हूँ।

आपकी ही।

वह रात और वह दिन किस प्रकार मैंने काटा, यह केवल मैं ही जानता हूँ। दूसरे दिन शाम को पाँच ही बजे से घाट पर जा बैठा, उसकी प्रतीक्षा में। गंगा जी का यह घाट उसके घर के बिलकुल पास था। बड़ी देर तक प्रतीक्षा करने के बाद वह आती दिखाई दी। सारा घाट सुनसान था। ऐसे ही दो-एक आदमी इधर-उधर बैठे गगा का बहाव देख रहे थे। मेरे सामने पहुँचते ही उसने मुस्करा कर नमस्ते किया। फिर बोली—"तुम्हे बड़ा इन्तजार करना पड़ा।"

"हाँ, मैं तो पाँच ही बजे से बैठा हूँ।" मैंने उत्तर दिया और पास ही बैठ गया।

"न बुलाती तो तुम आते भी न। बड़े मानी हो!"

"नहीं, मानी तो चाहे जितना होऊँ पर तुम्हारे सामने मान भला कब टिक सकता है। पर तुम्हारी बदनामी मैं कदापि नहीं सह सकता।"

उसकी आँखों में आँसू छलछला आये। "मेरे जीवन में वही एक मँहगी वस्तु है।" उसने कहा।

"तुम निश्चिंत रहो, तुम्हारा सम्मान और तुम्हारी बदनामी मैं अपने से अधिक समझूँगा।"

सहज मुस्कान उसके अधरों पर फिर खेलने लगी।

उसके बाद हम लोगों में बड़ी देर तक बातें होती रहीं। अँधेरा होने से पहले वह अपने घर लौट गई। अपनी माँ के साथ वह रहती

थी। बाद में मालूम हुआ कि उसकी माँ किसी धनी परिवार में रोटी बनाती है, लेकिन इस लड़की को वह स्वप्नों की दुनिया में पालती है।

हम लोग एक दूसरे से लगभग नित्य ही मिलते थे। अक्सर घाट पर वह मुझसे कुछ न कुछ पढ़ा ही करती थी। मुझको भी उसके प्रति कुछ ऐसा मोह हो गया था कि मैं अपनत्व की सम्पूर्ण भावना उसमे ही मिला देना चाहता था।

धीरे-धीरे दिन बीतते गये। मैंने बी० ए० पास किया और वह इंटर में पढ़ती थी। बी० ए० की परीक्षा का फल प्रकाशित होते ही मेरी माँ तथा भाभी को मेरे विवाह की धुन सवार हुई। एक विवाह तो उन लोगों ने करीब करीब तै ही कर डाला। भाभी ने लड़की की फोटो दिखा कर मुझ से मेरी राय माँगी।

मैं भला क्या उत्तर देता ? मैंने तो प्रेम से ही विवाह करने का निश्चय किया था। मैंने भाभी से सब बातें साफ-साफ कह दीं। प्रेम के घर का पता भी बता दिया। पहले तो माँ बहुत बिगड़ीं, पर भाभी ने समझाया, पढ़ा-लिखा लड़का है, उसकी बात भी रखना आवश्यक है। क्या हर्ज है, यदि वह लड़की ठीक हो।

दूसरे दिन आदमी भेज कर प्रेम के घर का पता लगाया गया। मैंने पता बता ही दिया था। शाम को जब मैं वापस आया तब घर में चारों ओर से मुझ पर वार होने लगे। माँ कहने लगीं—"नालायक़, पढाया लिखाया क्या इसीलिये कि तू रंडी से शादी करे।" और न जाने क्या-क्या वे बकती रहीं।

कुछ समझ न पड़ा। भाभी ने तब बतलाया कि प्रेम की माँ स्वजातीय अवश्य है, पर प्रेम का पिता कौन है, इसका कुछ पता नहीं। फिर आज तक वह न जाने कौन-सा पेशा कर के लड़की को इस प्रकार रख रही है।

हृदय को भारी आघात लगा। अभी ही मैं प्रेम से बातें बता कर लौटा था। उससे कहा था कि हमारा तुम्हारा विवाह हो जायगा। और यह सुन कर परिचय की इस लम्बी अवधि में पहली ही बार वह मेरे गले से लिपट गई थी। रात भर मुझे चैन न आई, बार-बार मैं अपना कर्त्तव्य निश्चित करता रहा।

दूसरे दिन मैंने प्रेम से जाकर सब बातें कहीं। सारी परिस्थिति ज्यों की त्यों उससे बयान कर दी। उसने क्षण भर सोचा और फिर बोली—"तुम्हारे घर वाले ठीक कहते हैं, तुम मुझसे विवाह कर के कभी सुखी नहीं रह सकते। अभी तुम मुझसे प्रेम करते हो, लेकिन जब समाज तुम्हे ठुकरायेगा तब तुम मुझसे घृणा करने लगोगे।"

"तुम्हे पा जाने पर मैं समाज की परवाह नहीं करता, प्रेम।" मैंने उत्तर दिया।

"तुम नहीं करते, यह ठीक है। मैं यह स्वीकार करती हूँ, लेकिन तुमसे और तुम्हारे निश्चय से समाज कहीं अधिक शक्ति-शाली है। मैं नीच हूँ, तुम उच्च। मेरे साथ विवाह करके तुम अपना भविष्य नष्ट न करो। तुमने मुझसे जो प्रेम किया है उसी के बल पर मैं यह भीख माँगती हूँ।" उसकी आँखों में आँसू छलछला आये।

मैं कुछ उत्तर न दे सका, उसे देखता रह गया। वह कुछ देर तक बैठी रही, फिर उठ कर चली गई। मैं निर्निमेष गंगा के वक्ष पर देखता ही रह गया। उस दिन कितनी रात तक मैं गंगा के उस तट पर बैठा रहा, यह नहीं कह सकता। बहुत रात बीते घर लौटा और चुपचाप अपने कमरे में जा कर सो गया।

दूसरे दिन मैं फिर घाट पर गया, पर वह न मिली। दो-तीन दिन तक बराबर उसकी प्रतीक्षा में घाट पर बैठा रहा, पर उसके दर्शन न हुए। अन्त में एक दिन मैंने उसके घर जाने का ही निश्चय किया। दोपहर में उसके घर गया। उसका मकान बन्द था। पास-पड़ोस में

पूछा। मालूम हुआ, दो-चार दिन से माँ-बेटी कहीं गई हैं। महीने भर तक मैं बराबर जाता रहा; पर ताला बन्द देख कर लौट आता। अन्त में एक दिन जब वहाँ गया तब मकान-मालिक ने कहा—"बाबू साहब, आप उनके कोई हैं?"

"नहीं! हाँ!" कुछ ऐसा कह पड़ा मैं।

उस नाटे और काले व्यक्ति ने उत्तर दिया—"तो साहब! वे न जाने कहाँ चली गईं, कुछ पता नहीं। मकान में भी ताला बन्द है। भाड़ा दो महीने से नहीं मिला। आप रुके तो मैं ताला तोड़ कर सब सामान आपके हवाले कर दूँ।"

"न बाबा! मैं नहीं जानता।" मैंने उत्तर दिया।

"खैर देखा जायगा", कह कर उसने ताला तोड़ना चाहा।

मैंने उसे रोकते हुए कहा—"अच्छा भाई, तुम अपना किराया मुझसे पेशगी ले लिया करो, पर सामान बन्द रहने देना।"

वह मान गया। वर्षों तक किरया दिया पर वह न लौटी।

माँ के लाख अनुरोध करने पर भी मैंने विवाह न किया और वे मेरी पत्नी का मुँह देखने की साध लिये ही स्वर्ग सिधार गईं। भाई साहब की भी यहाँ से बदली हो गई, पर मैं यहीं वकालत करता रहा। अभी पिछली गर्मी के दिनों की ही तो बात है कि मेरे जीवन में फिर एक बार प्रलय आ गया। उसने पत्र भेजा था। लिखा था, मरण शय्या पर है। एक बार मुझे देखना चाहती थी।

उसी दिन रायबरेली पहुँचा। इलाहाबाद से आकर वह एक स्कूल में अध्यापिका हो गई थी और वेदनापूर्ण जीवन का भार पाँच-छः वर्ष तक ढोती भी रही। पर अन्त में जो घुन लग गया था, उसने उसे खा डालने की पूरी तैयारी कर ली। क्षय रोग हो गया था। उसकी माँ भी मर चुकी थी। मुझे देख कर उसके चेहरे पर प्रसन्नता झलक उठी;

बोली—"तुम आ गये। मैं जानती थी कि तुम आओगे, इसीलिये तो लिखा था।"

मुझसे उसने मेरी स्त्री-बच्चों के बारे में पूछा और यह सुन कर कि मैंने अब तक विवाह नहीं किया, उसने संतोष की एक साँस ली। फिर बोली—"व्यर्थ ही तुमने मुझ अभागिनि के पीछे अपना जीवन नष्ट किया। मेरी एक साध थी कि तुम्हारी होकर मरती। वह आज पूरी हो गई। तुम मेरी माँग भर दो।"

मैंने सिंदूर से उसकी माग भर दी। वह उस दिन से प्रसन्न दिखाई पढ़ने लगी। रोग पिछड़ता मालूम पड़ा। चौथे दिन उसकी हालत फिर खराब हो गई। उसने मुझे पास बुला कर कहा—"अब मैं चल रही हूँ, तुम मेरा अन्तिम सस्कार विवाहिता हिन्दू स्त्री के समान ही करना।"

उसी दिन वह चल बसी। उसकी इच्छा के अनुसार ही मैंने सारा काम किया।

उसके बाद जो मेरे शरीर में घुन लग गया, तो फिर मैं अच्छा न हो सका। और अब डाक्टर कहते हैं कि मैं अच्छा न हो सकूँगा।

ख़त के टुकड़े

होटल के नौकर ने चाय का प्याला लाकर मेज पर रख दिया। धुएँ की धुँधली रेखा प्याले से उठ कर शून्य की ओर जा रही थी, ठीक उसी प्रकार, जैसे मेरे हृदय की इच्छायें धुँआँ बन कर किसी शून्य से टकराने के लिये प्रति क्षण उठती रहती हैं। और यह ससार एक चाय के प्याले की भाँति तो है, जिसमें वेदनाओं से तपा हुआ एक रस भरा है और उसमें से आकाक्षाओं का धुँआँ उठा करता है। मेरी विचार-धारा चल रही थी, और आप प्रति क्षण अपनी गर्मी को खो रही थी।

प्याला उठा कर मैंने ओठों से लगाया। एक जलन-सी अनुभव करता हुआ दो घूट पी गया। सोचने लगा—मेरा भी कोई जीवन है! घर से सैकड़ों मील की दूरी पर पड़ा हूँ, जहाँ अपना कोई नहीं। और घर पर ही है कौन है, जिसके पास बैठ कर क्षण भर अपने हृदय की वेदनाओं को सुना सकता? कोई पूछने वाला भी तो नहीं है। यहाँ दिन भर काम करता हूँ और शाम को घर आता हूँ। कितनी सीमित मेरी दुनिया है। और यह होटल! मानो यही मेरी दुनिया की चहार-दीवारी है। न इसके बाहर के ससार का मुझे ज्ञान है और न उससे सम्बन्ध—सम्बन्ध रख कर भी क्या करूँ? दुनिया से सम्बन्ध रखा, उसमें सिवा असफलता के और कुछ मेरे हाथ न आया। अब नये ससार से सम्बन्ध करने का साहस मैं करूँ?

विचार-धारा चल रही थी कि इसी बीच वह युवक मेरे पास आकर बैठ गया। अभी चन्द दिनों से वह मेरे बग़ल वाले कमरे में आकर

टिका है। कौन है, क्यों आया है, कब तक यहाँ रहेगा, इसका कुछ भी तो पता मुझे नहीं है। न मैंने कभी यह जानने का ही प्रयत्न किया। कोई ज़रूरत भी नहीं है। और न मैं बिना जरूरत किसी के परिचय के लिये इच्छुक रहता हूँ। आज जब वह आया तो मुझे आश्चर्य भी नहीं हुआ। मनुष्य एकान्त-प्रेमी जीव नहीं है। नया-नया इस शहर में वह बेचारा आया है; नवयुवक है। अकेले कैसे अपना समय वह काटे। जीवन मे कोई सङ्गी-साथी होना आवश्यक है। कुछ क्षण वह बैठा रहा। मेरी विचार-धारा न टूटी। अन्त में उसने निस्तब्धता भङ्ग करते हुये कहा—"बाबू साहब, क्या मैंने आकर कष्ट दिया है?"

तब मेरा ध्यान टूटा। अपनी उदासीनता पर मुझे स्वयं खेद हुआ। परिस्थिति का अनुभव करते हुये मैंने उत्तर दिया—"कदापि नहीं, महोदय; बल्कि मुझे तो इससे खुशी ही हुई है।"

"आप कुछ सोच रहे थे, मालूम होता है?"—उसने पूछा।

मैं सकुचित हो गया। बोला—"कुछ नहीं, कोई खास बात नहीं; लेकिन मेरा स्वभाव है कि कुछ न कुछ सोचा करता हूँ। सारा जीवन मेरा एकाकी ही बीता है, इसलिये सोचने की आदत-सी पड़ गई है।"

"हूँ!"—कह कर वह चुप हो गया। फिर कुछ क्षण चुप रह कर बोला--"आप कहाँ के रहने वाले हैं?"

"इलाहाबाद का हूँ। यहाँ नौकर हूँ।"

"अच्छा, तो आप नौकरी के सिलसिले में यहाँ हैं?"

"जी हाँ!"

"तो आप जब यहाँ स्थायी रूप से रह रहे हैं, तब क्यों नहीं घर वालों को भी साथ रखते?"

क्या उत्तर देता, उसके इस प्रश्न का कैसे उसे यह समझाता कि मेरा घरवाला कौन है जिसे साथ रखूँ? एक बार प्रयत्न किया था, सोचा था—अपना भी एक घर होगा, पर वह रमा मेरे हाथों से छिन

गई। घर बसाता तो अब किससे और किसके लिये ? जीवन का एक लोभ है, जिसे भार की भाँति लिये हुये फिरता हूँ।

मुझे चुप देख कर उसने फिर पूछा—"कहिये, आप किस चिन्ता में पड़ गये ?"

"कुछ तो नहीं ! यही सोचता हूँ कि आपको क्या उत्तर दूँ ? बताया न मैंने आपको कि मैंने सदा एकाकी जीवन बिताया है। कोई ऐसा नहीं है जिसे अपने साथ रख सकूँ, जिसके साथ अपनी वेदनाएँ, अपने दुःख बाँट कर भोग सकूँ। यह होटल आप देखते हैं, यही अपना विस्तृत कुटुम्ब है। ससार में यदि ममत्व की कोई परिधि मेरे लिये है, तो वह इसके बाहर नहीं है।"

उसने एक निश्वास खींची। फिर क्षण भर चुप रह कर बोला—"बड़े मज़े में हैं आप !"

"हाँ !"—मैंने उदासीन भाव से कह दिया। एक पुरानी वेदना रह रह कर हृदय में उठने लगी।

"आप कुछ भी समझे बाबू साहब, पर मैं आपके जीवन से ईर्ष्या करता हूँ। हो सकता है कि आप जीवन से थक गये हों; पर मैंने आपके से जीवन को स्वय अपनाया है।"

"अपने-अपने विचार हैं।"—मैंने उत्तर दिया। पर मेरी इच्छा अधिक बात करने की न थी।

युवक बड़ी देर तक बातें करता रहा। लखनऊ का रहने वाला था। घर में स्त्री है। माँ-बाप हैं। वहाँ विश्वविद्यालय मे पढता था। अब पढ़ना छोड़ कर घूम रहा है। नाम उसने अपना बताया 'सुरेश'।

वह तेजस्वी युवक मालूम होता है। गोरा छरहरा बदन, बड़ी-बड़ी आँखें हैं। बोलता है तो अपना बना लेता है। मिलनसार है। शीघ्र ही

घुल मिल जाता है। नौकरी की खोज में है। पर नौकरी भी आज कल ईश्वर की भाँति है, जिसका मिलना नितान्त असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य ही है। जिस समय उसने बी० ए० फ़र्स्ट क्लास में पास किया होगा, सोचा होगा—'जहाँ चाहे वहाँ नौकरी मिल जायगी'; पर आज हफ़्तों से सारे शहर का कोना-कोना खोज डाला; लेकिन किसी ने दस रुपये को न पूछा। और जब मैंने उस दिन बातों ही बातों में अपने दफ़्तर में एक अनुवादक के स्थान के रिक्त होने की बात कही, तो उसकी आँखें चमक उठीं, बोला—"यदि आप मुझे योग्य समझें तो करा दें। जन्म भर आभारी रहूँगा।"

मुझे आश्चर्य हुआ। आँखें फाड़-फाड़ कर उसे देखा। फिर कहा—"सुरेश बाबू, आपके उपयुक्त वह स्थान नहीं है। पचीस रुपये की जगह है। प्रेस की नौकरी है। सुबह से शाम तक काम कराके आपका खून चूस लेंगे वे।"

"खाली रहने की अपेक्षा तो वह कहीं अच्छा है, भाई साहब! और फिर अब मुझे कुछ पैदा ही करना चाहिये, नहीं तो मैं यहाँ रह नहीं सकता। घर से जो कुछ लेकर चला था, वह भी खर्च हो चुका है। ये सामान कितने दिन तक मेरी आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे?"

दूसरे दिन वह मेरे दफ़्तर में नौकर हो गया। परिश्रमी था। शीघ्र ही उसने अपने काम से सब का मन मोह लिया। मुझसे तो वह कृतज्ञता के भार से मानो दब-सा गया। सभी से कहता—"मेरे बड़े भाई के समान हैं, यदि आवश्यकता पड़े तो उनके लिये जान दे दूँ।"

यही नहीं कि वह इस प्रकार कहता ही हो। उसके दिल में इस बात का प्रमाण मुझे साफ़ दिखाई पड़ता। सदैव ही मेरे सुख का

ख्याल रखता। जीवन में पहली ही बार मैंने यह जाना कि आत्मीयता क्या वस्तु है। दफ़र से आते ही वह मेरे कमरे में चला आता। फिर हम एक साथ ही बैठते, बातें करते, चाय पीते, खाना खाते और कहीं आधी रात गये, वह उठ कर अपने कमरे में जाता। सदा हँसता रहता। बातें करता तो यौवन और जीवन की स्फूर्ति से पूर्ण। चिन्तित तो मैंने उसे कभी देखा ही नहीं। हाँ, कभी-कभी बात करते-करते वह उठ खड़ा होता, खिड़की से बाहर की ओर झाँक कर एक निःश्वास भरता और फिर वापस आकर बैठ जाता। मुझसे उसकी इस आदत मे कोई विशेष बात न जान पड़ी, इसलिये मैंने कभी पूछा नहीं।

... .

उन दिनों शहर में कोई फ़िल्म चल रही थी। "पास" मिल गये थे। सुरेश को सिनेमा देखने की रुचि नहीं। कहता है—"यह सब अच्छा नहीं लगता"; पर उस दिन मेरे कहने से वह चलने को तैयार हो गया।

वह एक सामाजिक फिल्म थी। एक युवक एक लड़की से प्रेम करता था। पहले तो उस लड़की ने युवक से विवाह करने का वादा किया; परन्तु बाद मे जब उसके माता-पिता ने एक दूसरे से विवाह कर दिया तो वह अपने प्रेमी उस युवक को बिलकुल भूल-सी गई। और उस युवक को इस घटना से इतनी चोट पहुँची कि वह ससार से विरक्त हो गया और शराब पीकर अपना जीवन नष्ट करने लगा। अन्त में उसे तपेदिक हो गया और वह एक दिन इस असार ससार से अपनी प्रेम-पीडा लिये हुये चल बसा।

मेरे जीवन में सदा दुःख रहा है, इसलिये ऐसी फिल्म मुझे कभी पसन्द न आई। सिनेमा मैं देखना चाहता हूँ क्षणिक मनोरञ्जन के लिये। इसलिये उस फिल्म को देख कर मुझे दुःख हुआ। फिल्म

समाप्त होने के बाद हम होटल को वापस जा रहे थे। सुरेश कुछ देर तक चुप रहा फिर एकाएक बोल पड़ा—"स्त्री की जाति होती बड़ी बेवफा और कपटी है।"

इच्छा कुछ उत्तर देने की न थी, फिर भी बोलना ही पड़ा—"सुरेश बाबू, तुम भूल करते हो! मैं तो पुरुष को ही ऐसा समझता हूँ। हाँ, स्त्री कर्तव्य के लिये अपने हृदय को कुचल डाल सकती है।"

"तुम्हे इसका क्या अनुभव? तुमने स्त्री का बाहरी रूप देखा है। उसके स्वभाव का अनुभव करने का तुम्हे कभी अवसर नही मिला।"—उसने एक अनुभवी की भाँति उत्तर दिया। सड़क के किनारे बिजली के खम्भों से लटके हुए बिजली के बल्बों के प्रकाश मे मानो उसकी आँखें कह रही थीं—तुम नहीं जानते यह मेरा अनुभव है।

मुझे कुछ उत्तर देने का साहस न हुआ। क्षण भर चुप रह कर वह फिर कहने लगा—"देखिए, स्त्री एक पहेली है, जिसे समझ सकना कठिन ही नहीं, असम्भव है। वह हृदय से किसी को प्रेम करती है, लेकिन प्रेम का स्वाग किसी दूसरे के साथ रचती है।"

चुप रहना असम्भव था। मैं स्त्री-जाति का इस प्रकार अनादर सहन नहीं कर सकता। मैंने तुरन्त उत्तर दिया—"सुरेश, एक ही तराजू से संसार को तौलना कदापि बुद्धिमानी नहीं है।"

"हाँ, हो सकता है; लेकिन मनुष्य के पास अपने अनुभव की ही तो सबसे बड़ी तराजू है।"

"लेकिन वह तराजू यदि दोषपूर्ण हो?"—मैंने उत्तर दिया।

"ऐसा नहीं हो सकता! मेरा अनुभव कच्चा नहीं है बाबू साहब!" —क्षण भर चुप रह कर वह बोला—"बाबू साहब, मैं तुम्हे अपना सबसे बड़ा हितैषी, मित्र और सगे भाई की भाँति समझता हूँ। एक

बात आज तक तुमसे छिपाये रहा। कई बार इच्छा हुई,-तुमसे कह कर कुछ दिल का भार हलका कर लूँ, पर न कह सका। लेकिन आज सब कह ही डालूँगा।"

वह रुक गया, शायद गला साफ करने को, फिर कहने लगा—"आप समझते होंगे मैं यहाँ पच्चीस रुपये की नौकरी करता हूँ, इसलिये कि मुझे ज़रूरत है। पर भाई ऐसा नहीं है। यदि मैं आज घर पर होता तो किसी अच्छी जगह नौकर होता। तुमसे मैंने नहीं बताया, पर मेरे पिता एक अच्छी जगह पर हैं; सरकार में उनका मान है। मेरे लिये सौ-दो सौ की नौकरी मुश्किल नहीं, पर मुझे उस जीवन से घृणा हो गई है। इस पच्चीस रुपये में ही खुश हूँ। जानते हो क्यों? केवल अपनी स्त्री की बेवफाई के ही कारण। सुनो, बताता हूँ—मेरा विवाह दो साल पहले हुआ था। मेरी स्त्री सुन्दर है; स्वभाव की अच्छी है। यह भी मैं कह सकता हूँ कि उसने मुझे यह नहीं जानने का मौक़ा दिया कि वह मुझसे प्रेम नहीं करती। मैं उससे पागल की भाँति प्रेम करता था। पर उसने मेरे साथ विश्वासघात किया। अन्दर ही अन्दर वह कुछ दूसरा ही गुल खिला रही थी। एक दिन मैं कमरे में बैठा था, वह किसी काम से नीचे चली गई। उसका बक्स खुला था। मैं सोचा—इसमें से कोई जरूरी चीज हटा दूँ, ताकि जब खोजे तो मज़ा आये। बक्स खोल कर गले का हार खोलने लगा कि मेरे हाथ में एक लिफाफा लग गया। देखा उसमें दस-बारह पत्र थे। उन्हें जेब में रख कर बाहर चला। बैठक में बैठ मैंने उन्हें पढा तो मेरे पैर तले से ज़मीन निकल गई। वे मेरी स्त्री के प्रेमी के पत्र थे। जी में आया उसका गला घोंट दूँ; परन्तु मैंने उसे सदैव इतना प्रेम किया था कि यह करना मेरे लिये असम्भव था, इसलिये मैंने उसी क्षण घर छोड़ दिया। और अब तुम्हारे साथ हूँ।"

वह चुप हो गया। मैं ध्यान से उसकी कहानी सुन रहा था। कुछ उत्तर न दिया।

होटल पहुँच कर हम अपने कमरे मे जाकर सो रहे।

दूसरे दिन मैं जब सुबह उठा तो देखा, उसके कमरे के बाहर नीले रंग के लेटर पेपर के टुकडे पड़े हैं। लिखावट देखी, तो आश्चर्य हुआ टुकड़ों को उठा कर देखा। आश्चर्य से मैंने उन्हे बटोर लिया, कम मे ले आया और उन्हे ठीक से लगाया। पत्र का एक अश था वह मैंने हाथों के बीच सिर रख लिया। आह! ये वे ही पत्र थे जो मैं रमा को लिखे थे।

× × ×

उसी समय मैंने वह शहर छोड़ दिया। पता नहीं, सुरेश क क्या हुआ।